बाल विज्ञान

तृतीय-भाग

रचयिता

संकलन-सम्पादन

प्रज्ञा श्रमण मुनि अमितसागर

प्रकाशक

श्री धर्मश्रुत शोध संस्थान,

श्री दिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर नसिया जी

कोटला रोड़, फिरोजाबाद (उ०प्र०)

कृति – बाल विज्ञान, तृतीय-भाग, पुष्प संख्या - अष्टम
कृतिकार - प्रज्ञा श्रमण मुनि अमितसागर

पावन प्रसंग - बीसवीं शताब्दी के प्रथम दिगम्बर जैन आचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर जी महाराज के तृतीय पट्टाधीश आचार्य शिरोमणि श्री धर्मसागर जी महाराज के जन्म शताब्दी वर्ष १९१३-२०१४ के उपलक्ष्य में प्रकाशित।

[पुस्तक प्राप्ति स्थान]

१. चन्द्रा कापी हाऊस, हास्पिटल रोड, आगरा (उ० प्र०)
२. वास्ट जैन फाउण्डेशन ५९/२ बिरहाना रोड़ , कानपुर (उ० प्र०) मो० : 09451875448
३. आलोक जैन, हनुमानगंज c/o श्री दिगम्बर जैन रत्नत्रय मन्दिर नसिया जी, कोटला रोड़, फिरोजाबाद (उ० प्र०) मो०: 09997543415
४. आचार्य श्री शिवसागर ग्रन्थमाला, श्री शान्तिवीर नगर, श्री महावीर जी, जि० करौली (राज०)
५. श्री दि० जैन अष्टापद तीर्थ, विलासपुर चौक, धारूहेड़ा, गुडगांव (हरि०) मो०: 09312837240
६. आर्ष ग्रन्थालय, जैन बाग, सहारनपुर (उ० प्र०) मो०: 09410874703
७. विशुद्ध ग्रन्थालय, सर्वऋतु विलास, उदयपुर (राजस्थान)

कम्पोजिंग - वर्धमान कम्प्युटर, फिरोजाबाद (यू०पी०)
संशोधित संस्करण -प्रथम; सन् २०१४,
प्रतियाँ - २०००
मूल्य - ३० रूपये
मुद्रक - चन्द्रा कापी हाऊस, आगरा (उ० प्र०) मो० : 09412260879

बाल विज्ञान

भाग ३

जैनत्व

प्रश्न १ - जैन किन्हें कहते है ?

उत्तर - जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को तथा पाप कर्मरूप शत्रुओं को जीता है, ऐसे जितेन्द्रिय भगवान की उपासना करने वाले जैन कहलाते हैं।

प्रश्न २ - यदि आप जैन हैं तो आपको क्या - क्या करना चाहिए ?

उत्तर - (१) प्रति दिन जिनेन्द्र देव के दर्शन करना चाहिए।
(२) रात्रि भोजन का त्याग करना चाहिए।
(३) पानी; दोहरे कपड़े से छानकर पीना चाहिए।
(४) शुद्ध शाकाहारी भोजन करना चाहिए।
(५) सप्तव्यसनों का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न ३ - संक्षिप्त में देव दर्शन विधि समझाइये ?

उत्तर - प्रत्येक जैन धर्मावलम्बी को प्रातः सूर्योदय के पहले जागकर नववार णमोकार महामंत्र का स्मरण करना चाहिए पुनः नित्य कर्म (शौच, मंजन, स्नानादि) से निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र पहन कर, चमड़े के जूते-चप्पल-बैल्ट आदि नहीं पहनना चाहिए पुनः अपने ही घर से शुद्ध मर्यादित, श्रद्धानुसार उच्च कीमत वाले चावल, बादाम, इलायची, लौंग, काजू, किशमिश, अखरोट आदि यथोचित सरस-रसीले, सुगंधित पके हुये फल-सामग्री डिब्बी आदि में रखकर, नीचे चार हाथ जमीन देखते

हुए मन्दिरजी की ओर णमोकार मंत्र या कोई स्तुति-स्तोत्र बोलते हुए जाना चाहिए ।

मंदिर जी में प्रवेश करने से पूर्व; शुद्ध छने जल से पैर धोना चाहिए पुनः मन्दिर जी के प्रवेश द्वार पर **ॐ जय - जय - जय, निस्सही - निस्सही - निस्सही** बोलते हुए, आगे बढ़कर घंटे को हल्के - से तीन बार बजाना चाहिए फिर हाथ जोड़कर; भगवान की मूर्ति सामने खड़े होकर, साथ में लायी सामग्री को सामने रखी बेंच आदि पर पंच-परमेष्ठी के प्रतीक पाँच स्थान पर **''अर्हत्-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्व साधुभ्यो नमो नमः''** यह मंत्र बोलते हुए चढ़ाकर; पुरुष-बच्चे; पंचाङ्ग- अष्टांग एवं महिलायें-बच्चियाँ; गवासन से मूर्ति को तीन बार नमस्कार करें ।

नमस्कार करते समय भी णमोकार मंत्र या कोई स्तुति-स्तोत्र पढ़ते हुए वेदी की तीन प्रदक्षिणा देना चाहिए पुनः जिनाभिषेक (गंधोदक) लगाकर, एक तरफ खड़े होकर जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति को नीचे से ऊपर तक अवलोकन करते हुए चिन्तन करना चाहिए ।

सर्वप्रथम प्रतिमा की प्रशस्ति पर अंकित कुन्दकुन्दाचार्य आम्नाये **''बलात्कार गणे''** इस वाक्य के अर्थ को खोजो । बलात्कारगण क्या है ? कुन्दकुन्दाचार्य; श्वेताम्बर आचार्य से गिरनार पर्वत की यात्रा में वाद-विवाद में विजयी हुए थे, तब इस गण का नाम बलात्कार गण हुआ ।

पुनः प्रतिमा पर नीचे बीचों - बीच उनका चिन्ह अंकित है, यह उनके **१००८ चिन्हों** में से एक है पुनः आप भगवान के हाथ-पैरों की मुद्राओं में चिंतन करें फिर उनकी छाती पर बना हुआ पुष्प चिन्ह क्या है ? इस चिन्ह को **श्री वत्स** कहते हैं पुनः '' छवि वीतरागी नग्न मुद्रा **दृष्टि नासा** पे धरैं'' नाशाग्र दृष्टि क्यों हैं ?

क्योंकि उनके अन्दर से काम - क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा चिन्तन करें पुनः उनके बाल घुंघराले हैं। यह बाल नहीं हैं, इन्हें **"सीतायें"** कहते हैं।

ऊपर तीन छत्र; तीन लोक के स्वामी होने का प्रतीक हैं। **भामण्डल** में सातभव झलकते हैं। अशोक वृक्ष - रोग - शोक; चिन्ता - फिक्र नष्ट करने का प्रतीक है, आदि - आदि प्रकार से चिन्तन करना चाहिए और भावना करनी चाहिए कि मैं भी आपके समान कब बनूँ ?

जिनदेव के दर्शन करने के बाद; जिनवाणी को चार स्थानों पर अर्घ्य चढ़ाते हुए **"प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः"** बोलकर नमस्कार करना चाहिए, यथा समय शास्त्रों का स्वाध्याय भी करना चाहिए, माला फेरनी चाहिए।

यथा समय यदि कोई आचार्य-उपाध्याय-साधु हों तो उनको भी रत्नत्रय के प्रतीक तीन स्थानों पर द्रव्य चढ़ाते समय **सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्रेभ्यो नमो नमः** बोलकर; नमोऽस्तु कहते हुये नमस्कार करना चाहिए, प्रवचन आदि सुनना चहिए तथा आर्यिका जी को "वन्दामि" कहकर; ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका जी को "इच्छामि - इच्छाकार" कहकर; नमस्कार करते हुए अर्घ्य चढ़ाना चाहिए। त्यागी - व्रती - ब्रह्मचारी आदि को वन्दना कहकर; विनय करना चाहिए।

इस प्रकार मन्दिर जी से बाहर निकलते समय दरबाजे पर; मूर्ति आदि को बिना पीठ दिखाये तीन बार **आस्सही - आस्सही - आस्सही** कहकर, घर की ओर आना चाहिए। **नोट** - विशेष दर्शन विधि के लिए लेखक की "मन्दिर" पुस्तक अवश्य पढ़ें। जो हिन्दी, गुजराती, कन्नड़, मराठी, अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी है।

प्रश्न ४ - रात्रि भोजन त्याग के क्या नियम हैं ?

उत्तर - भोजन; चार प्रकार का होता है। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय, अतः जिन व्यक्तियों की शक्ति है वे चारों प्रकार के आहार का त्याग; सूर्य अस्त के ४८ मिनिट पहले से; सूर्योदय के ४८ मिनिट तक करते हैं, लेकिन जिन व्यक्तियों में त्यागने की शक्ति नहीं है, उन्हें कम से कम रात्रि में अन्न (अनाज) की वस्तु अवश्य ही त्याग करना चाहिए।

प्रश्न ५ - दोहरे कपड़े से पानी छानने की विधि बताइये ?

उत्तर - पानी छानने का कपड़ा; डेढ़ मीटर लम्बा, पौन मीटर चौड़ा हो। जिस इकहरे कपड़े में सूर्य की किरणें भी पार न कर सकें, ऐसे लट्ठे-या खादी के कपड़े को दोहरा करके, खाली वर्तन के मुँह पर गहरा करके बिछाना चाहिए पुनः अनछने पानी को शनैः-शनैः उस कपड़े लगे बर्तन में डालना चाहिए।

जब पानी से वर्तन भर जाए तो कपड़े को अनछने पानी वाले वर्तन में उल्टा बिछा करके उस पर छना पानी डालना चाहिए, जिससे कपड़े में एकत्रित जीव सुरक्षित हो जायें पुनः उस जीवाणी को कुयें में कड़े - दार बाल्टी से उतार कर विसर्जित करना चाहिए।

जेड-पम्प या हेण्ड-पम्प का पानी प्रयोग करने वाले को; उसकी पाइप में एक कीप लगानी चाहिए, जिससे उसमें जीवाणी डाली जा सके। यदि नल से पानी छाना हो तो भी जीवाणी को सावधानी से जल प्रवाह में बहा देना चाहिए।

नलों में पतले छन्ने वाली थैली से छना जल; अनछने जल के समान है। घर से बाहर जल पीने के लिए लट्ठे या खादी का रूमाल अलग रखना चाहिए, जब भी जल पियें रूमाल को जग - ग्लास या लोटे के मुँह पर लगाकर छना हुआ पानी ही पियें।

प्रश्न ६ - शुद्ध शाकाहारी भोजन क्या है ?

उत्तर - शुद्ध - सात्विक भोजन ही शाकाहारी भोजन हैं, जिसमें सभी प्रकार के अन्न (अनाज) एवं शुद्ध घी - दूध के साथ सात्त्विक वनस्पतियाँ

(जमींकन्द को छोड़कर) फल - मेवा आदि भी मर्यादा पूर्वक खाना शुद्ध शाकाहारी भोजन है ।

प्रश्न ७ - व्यसन की परिभाषा बतलाते हुए, सप्त व्यसनों का संक्षेप में वर्णन करो ?

उत्तर - **दोहा** - जुआ खेलना मांस मद, वेश्या व्यसन शिकार ।
चोरी पर-रमणी रमण, सातों व्यसन निवार ।।

वि+असन= व्यसन अर्थात् खोटी (बुरी) आदत । (१) जुआ खेलना; (२) मांस खाना; (३) शराब पीना; (४) वेश्या गमन करना; (५) शिकार करना; (६) चोरी करना; (७) परस्त्री सेवन करना; ये सात व्यसन हैं ।

१. जुआ खेलना :– अपने धन-सम्पत्ति, रुपये-पैसे से हार-जीत की शर्त लगाना जुआ है । जैसे-लाटरी, सट्टा, ताशपत्ते, शतरंज, कैरम बोर्ड, क्रिकेट, रेस आदि के माध्यम से रुपये-पैसे की हार-जीत । जुआ में "पाण्डव" प्रसिद्ध हुये ।

२. मांस खाना :– दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों तक के कलेवर (शरीर) को मांस की संज्ञा है । जिसे जीवों को मारकर प्राप्त करते हैं, उस मांस में प्रति समय असंख्यात जीव उत्पन्न होकर; मरते रहते हैं । मांस का भोजन; रोगों, दुर्बुद्धि एवं दुर्गति को देने वाला है । अंडा भी मांसाहारी हैं, अतः मांस का त्याग करना चाहिए । इसके अलावा बाजार की बनी रबड़ी, चाट, मिठाई, नमकीन, अचार, बड़ी, पापड़, मुरब्बा, डबल-रोटी आदि भी नहीं खानी चाहिए । मांसाहार में **"बक राजा"** प्रसिद्ध हुआ ।

३. मद्य-शराब पीना :– जो अनेक त्रस जीवों के शरीर (कलेवर) का सड़ा हुआ रस है, जो पीने के बाद नशा उत्पन्न करता है और हिताहित को भुला देता है । रात-दिन शांति की जगह अशांति हो जाती है । शराब के पीने से अनेक असाध्य रोग भी हो जाते हैं, धन की भी बर्बादी होती है, अतः शराब का त्याग करना चाहिए ।

आधुनिक फ्रूट बीयर भी शराब का अंग है। मद्यपान में **"यादव वंशी"** प्रसिद्ध हुए, क्योंकि शराब के कारण ही श्रीकृष्ण की द्वारिका नष्ट हुई थी। स्मैक, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदि मद्य पान में आते हैं।

४ - वेश्या गमन :– तीव्र मैथुन इच्छा से; पैसा देकर बजारू स्त्री (काल गर्ल्स) आदि से सम्बन्ध रखना वेश्या गमन है। वेश्या गमन करने से एड्स जैसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा धन की भी हानि होती, अतः वेश्या गमन त्याग करना चाहिए। वेश्यागमन में **"चारुदत्त "** प्रसिद्ध हुआ।

५ - शिकारः– डंडा, चाबुक, जाल, बंदूक - तमंचा, धनुष - बाण, चाकू - तलवार आदि के माध्यम से; मनोरंजन हेतु कुत्ता - बिल्ली, बन्दर - रीछ, शेर - चीते, हिरण - खरगोश, मछली - मगर, मेढ़क - तितली आदि किसी भी जीव को मारना - तड़पाना शिकार व्यसन कहलाता है, अतः शिकार व्यसन हमेशा के लिए छोड़ देना चाहिए। शिकार में **"ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती"** प्रसिद्ध हुआ।

६ - चोरी :– किसी के रुपये, सोना - चाँदी, मोटर-कार, मकान आदि; धोखा देकर छीनना-हड़पना चोरी है। मित्रों की कापी, पेन आदि चुराना; चोरी व्यसन है। चोरी करने से दूसरों का विश्वास घट जाता है, आत्म सम्मान गिर जाता है और पुलिस आदि के द्वारा भी दण्ड मिलता है, अतः चोरी व्यसन का त्याग कर देना चहिए। चोरी में **"तापस"** प्रसिद्ध हुआ।

७. पर-स्त्री सेवन :– पर-स्त्री के रूप आदि में आसक्त होकर उससे मैथुन की इच्छा करना (स्त्रियों के लिए पर-पुरुष की इच्छा करना) पर-स्त्री सेवन व्यसन है। इससे कुल की कीर्ति नष्ट होती है, अनेक रोग उत्पन्न होते हैं तथा जीवन की धार्मिकता नष्ट हो जाती है। पति-पत्नी में कलह होती है, अतः पर-स्त्री सेवन का त्याग करना चाहिए। **"परस्त्री आसक्ती में रावण"** प्रसिद्ध हुआ।

संक्षिप्त श्रावकाचार

प्रश्न १ - श्रावक किसे कहते है ?

उत्तर - (१) जो श्रद्धावान, विवेकवान एवं क्रियावान हो,उसे श्रावक कहते हैं।

(२) जो सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा-भक्ति पूर्वक पूजा-दान आदि के द्वारा अपनी धन-सम्पदा का सदुपयोग करता है,उसे श्रावक कहते हैं।

(३) "शृणोति इति श्रावकः" जो आत्म हित की बात सुनें, उसे श्रावक कहते हैं।

(४) शृणोति साधु वाक्यानि, व्रतान् धारयन्ति च।
करोति शुभ कर्माणि, श्रावकः तद् विधीयते ॥

अर्थ - जो साधु के हित-मित-प्रिय वचनों को सुनकर; व्रत पूर्वक शुभ क्रिया को करता है, वह श्रावक है।

प्रश्न २ - व्रतरूप क्रिया को पालने वाले श्रावकों के कितने भेद हैं ?

उत्तर - व्रतरूप क्रिया को पालने वाले श्रावकों के तीन भेद हैं -

(१) पाक्षिक; (२) नैष्ठिक; (३) साधक।

प्रश्न ३ - पाक्षिक श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो श्रावक; अष्ट-मूलगुणों का परिपालन करता हुआ, श्रावकोचित आवश्यक कर्म को करता है, वह पाक्षिक श्रावक कहलाता है।

प्रश्न ४ - मूलगुण किसे कहते हैं तथा अष्ट मूलगुणों के नाम बताओ ?

उत्तर - जीवन के अनिवार्य (मुख्य) गुणों को मूलगुण कहते हैं। जैसे-मूल (जड़) के बिना वृक्ष का अस्तित्व नहीं रह सकता। वैसे ही मूलगुण के बिना श्रावक का अस्तित्व नहीं होता, अतः अष्ट मूलगुणों का पालन करना अनिवार्य है।

(क) (१) मद्य (शराब); (२) मांस; (३) मधु (शहद); (४) बड़; (५) पीपल; (६) पाकर; (७) ऊमर; (८) कठूमर; इन आठों के त्याग को अष्ट-मूलगुण कहते हैं।

(ख) पाँच अणुव्रतों का पालन एवं तीन मकार का त्याग; आठ - मूलगुण हैं। (१) अहिंसाणुव्रत; (२) सत्याणुव्रत; (३) अचोर्याणुव्रत; (४) ब्रह्मचर्याणुव्रत; (५) परिग्रहपरिमाणाणुव्रत; (६) मद्य; (७) मांस; (८) मधु; इन तीन मकारों का त्याग अष्ट-मूलगुण है।

(ग) (१) मद्य त्याग; (२) मांस त्याग; (३) मधु त्याग; (४) रात्रि भोजन त्याग; (५) पाँच पंचोदम्बर फलों का त्याग; (६) पंच परमेष्ठी को नमस्कार; (७) जीव दया; (८) जल छान कर पीना; ये भी श्रावक के आठ-मूलगगुण हैं, अतः उपरोक्त तीनों प्रकार से बतलाए गए अष्ट-मूलगुण; पालन करने योग्य हैं।

प्रश्न ५ - पाक्षिक श्रावक किन आवश्यक क्रियाओं को करता है ?

उत्तर - पाक्षिक श्रावक; छह आवश्यक क्रियाओं को करता है। (१) देव पूजा; (२) गुरूपास्ति; (३) स्वाध्याय; (४) संयम; (५) तप; (६) दान।

प्रश्न ६ - देव पूजा किसे कहते हैं ?

उत्तर - नव देवताओं की भक्ति, स्तुति, वन्दना, गुणों का स्मरण करते हुए जो अष्ट-द्रव्य अर्पित किए जाते हैं, उसे देव पूजा कहते हैं।

प्रश्न ७ - नव देवताओं के नाम बताओ ?

उत्तर - (१) अरिहंत; (२) सिद्ध; (३) आचार्य; (४) उपाध्याय; (५) साधु; (६) जिनधर्म; (७) जिनागम-शास्त्र; (८) जिन-चैत्य (प्रतिमा); (९) जिन-चैत्यालय (मंदिर); ये नव देवता हमेशा पूज्यनीय हैं।

प्रश्न ८ - पूजा के अष्ट-द्रव्यों के नाम बताइये ?

उत्तर - (१) जल; (२) चन्दन; (३) अक्षत; (४) पुष्प; (५) नैवेद्य; (६) दीप; (७) धूप; (८) फल; ये पूजा के अष्ट-द्रव्य हैं। इन आठों को एक साथ मिला देने से अर्घ्य बन जाता है।

प्रश्न ९ - पूजा के कितने भेद हैं ?

उत्तर - पूजा के दो भेद हैं - (१) द्रव्य पूजा (२) भाव पूजा ।

(१) द्रव्य पूजा - अष्ट-द्रव्य सामग्री से जो नवदेवताओं की पूजन की जाती है, उसे द्रव्य पूजा कहते हैं ।

(२) भाव पूजा -नवदेवताओं का स्तुति-स्तोत्र, भक्ति-वन्दना आदि के माध्यम से गुणों का चिन्तन करना भाव पूजा है ।

प्रश्न १० - द्रव्य पूजा के कितने भेद हैं ?

उत्तर - द्रव्य पूजा के ५ भेद होते हैं । (१) नित्यमह; (२) अष्टाह्निक; (३) इन्द्रध्वज; (४) महामह; (५) कल्पद्रुम ।

प्रश्न ११ - नित्यमह पूजा का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - (१) प्रतिदिन अपने घर से ले जाकर जल-चन्दनादि शुद्ध सामग्री द्वारा नव देवताओं की श्रद्धा - भक्ति सहित अर्चना करना नित्यमह पूजा है ।

(२) अपने पुण्ययोग से प्राप्त धन-सम्पदा आदि से जिन मंदिर-बनवाना जिनवाणी (शास्त्र) छपवाना । मंदिर जी के लिए चल - अचल सम्पत्ति; जैसे -दुकान-मकान-खेत, रथ, पांडुकशिला, छत्र, चँवर, चंदोवा आदि देना भी नित्यमह पूजा है ।

प्रश्न १२ - अष्टाह्निक पूजा का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - प्रतिवर्ष के प्रत्येक नन्दीश्वर पर्व (कार्तिक, फाल्गुन, आषाढ़) के शुक्ल पक्ष की अष्टमी से पूर्णिमा तक जो चारों निकाय के देवों द्वारा, आठवें नन्दीश्वर द्वीप में आठ दिन लगातार पूजा की जाती है । उसी प्रकार भव्य मनुष्यों द्वारा जो यहाँ पूजा की जाती हैं, उसे अष्टाह्निक पूजा कहते हैं ।

प्रश्न १३ - इन्द्रध्वज पूजा का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - जो पूजा; विशेष वैभव के साथ स्वर्ग के इन्द्रों द्वारा ४५८ अकृत्रिम चैत्यालयों पर ध्वज स्थापना करते हुए की जाती है, उस पूजा को इन्द्रध्वज पूजा कहते हैं ।

प्रश्न १४ - महामह पूजा का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - जिस पूजा को शक्ति अनुसार वैभव-प्रभावना के साथ; भक्ति पूर्वक मुकुटबद्ध राजा; मण्डलेश्वर-महामण्डलेश्वर राजा करते हैं, इस पूजा को महामह-सर्वतोभद्र या चतुर्मुख पूजा कहते हैं ।

प्रश्न १५ - कल्पद्रुम पूजा का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - जो पूजा; कल्पवृक्ष के समान इच्छित फल देने वाली हो; ऐसी चक्रवर्तियों के द्वारा तीर्थङ्कर के समवशरण में की जाने वाली पूजा को कल्पद्रुम पूजा कहते हैं । इस कल्पद्रुम पूजा की विशेषता है कि इस पूजा को करने वाला प्रजा (प्राणियों) को (किमिच्छिक) इच्छानुसार मुँहमांगा दान देता है ।

प्रश्न १६ - नैमित्तिक पूजा का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - जो पूजा; सातिशय घटना से सम्बन्ध रखती हो; ऐसी पूजा को नैमित्तिक पूजा कहते हैं । जैसे-दीपावली को निर्वाण पूजा, श्रुत पंचमी को शास्त्र पूजा, रक्षाबंधन को गुरुपूजा आदि ।

प्रश्न १७ - भाव पूजा का स्वरूप बताओ ?

उत्तर - जिनेन्द्र देव, जिनवाणी एवं दिगम्बर-गुरु के उत्तम गुणों का गायन करना, छन्द-कविता-श्लोक आदि में निबद्ध करना भाव पूजा है तथा पाँच पाप-आरम्भ आदि के त्यागी मुनिगणों द्वारा भक्ति-स्तुति-स्तोत्र, भजन-विनती आदि में उत्तम गुणों का उच्चारण करना, चिन्तन करना; लिखना भी मुनियों द्वारा भाव पूजा है ।

प्रश्न १८ - सद्गृहस्थ –श्रावक की द्रव्य पूजा विधि एवं अंग बतलाइये ?

उत्तर - पूजा के ७ अंग है - (१) अभिषेक; (२) आह्वानन; (३) स्थापन; (४) सन्निधिकरण; (५) पूजा; (६) शान्ति पाठ; (७) विसर्जन।

(१) अभिषेक : – प्रातःकाल सामायिक आदि दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर; घर से ही शुद्ध धुले वस्त्र (धोती - दुप्पट्टा) पहनकर तथा उत्तम आठों - द्रव्य धोकर मंदिर जी में ले जाना चाहिए । आज-कल हमारे आलस्य एवं अशुद्धियों के कारण मंदिर जी में ही धोती -

दुपट्टे एवं अभिषेक-पूजा सामग्री की व्यवस्था की जाने लगी हैं, लेकिन प्राचीन समय में व्यक्ति अपने घर से तैयार होकर; पूजन - सामग्री आदि धोकर ले जाता था। **उदाहरण** - जीवन्धर कुमार ने जब कुत्ते को नवकार सुनाया, तब वे पूजा की सामग्री घर से साथ ले जा रहे थे।

मंदिर जी में देव - दर्शन विधि पूर्ण करके, जिनवाणी में से संस्कृत के अभिषेक पाठ (हिन्दी के पंचकल्याणक या पंचामृत अभिषेक पाठ लगभग बीस प्राचीन आचार्यों के द्वारा रचित हैं, वे भी आगम प्रमाण हैं) पढ़कर उत्तमोत्तम शुद्ध सुगंधित द्रव्यों से जिनाभिषेक करके, जिन - प्रतिमा को अच्छी तरह शुद्ध कपड़ों से साफ करना चाहिए पश्चात् पूजा की पुस्तक के अनुसार पूजा विधि में प्रथम विनय पाठ पढ़ते हैं पुनः णमोकार मंत्र के बाद स्वस्ति - मंगल-विधान आदि पढ़ते हैं।

प्रश्न १९ - पूजा करते समय जब भगवान की मूर्ति साक्षात् सामने वेदी पर विराजमान हैं फिर उनका आह्वानन, स्थापन एवं सन्निधिकरण क्यों किया जाता है ?

उत्तर - (२) आह्वानन : — समवसरण से जब तीर्थङ्कर प्रभु विहार करते हैं तब देवतागण सब तरफ दो - सौ पच्चीस कमलों की रचना करते हैं। भगवान इन्हीं कमलों पर पैर रखकर चलते हैं। यद्यपि चलते समय भगवान के पैर कमलों से चार अंगुल ऊपर रहते हैं।

जिनालय की वेदियाँ समवसरण का प्रतीक हैं। जब हम भगवान की पूजा करते हैं तब भगवान को आह्वानन करते हुए भावात्मकरूप से विहार कराकर उन्हें अपने हृदयरूपी मन्दिर में लाते हैं। उस समय हम पुष्पों को हाथों में लेकर उनके पैरों के नीचे पुष्पों की रचना कर रहे हैं, ऐसा भाव करना चाहिए।

जैसे - अपने घर पर आने वाले स्नेहीजन को लोग "आइए - आइए - आइए" शब्द उच्चारण कर; हाथों से सत्कार-संकेत खड़े होकर करते हैं। वैसे ही हमारे परमार्थ साधक-आराध्य; सच्चे देव -

शास्त्र-गुरु को अपने मनरूपी मंदिर में आह्वानन करने के लिए, मुँह से कहते हुए।"ॐ ह्रीँ श्री देव-शास्त्र-गुरु समूह अत्र-अवतर-अवतर-संवौषट्; इति आह्वानन।" ठोने में पुष्पों को क्षेपण करना चाहिए ।

(३) स्थापना : – जब भगवान को भावनात्मक तरीके से आह्वानन करते हुये अपने हृदय के समीप ले जाकर उन्हें बड़े नम्र भाव से अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः स्थापनं; इस मन्त्र को पढ़ते हुए उन्हें अपने हृदय के सिंहासन पर विराजमान करते हैं ।

मंत्र में दो-दो बार तिष्ठ-तिष्ठ, ठः-ठः पद इसलिए पढ़ते हैं कि बैठी हुई मुद्रा के भगवान तिष्ठ-तिष्ठरूप में एवं खड्गासन मुद्रा के भगवान को ठः-ठः रूप से विराजमान हों, क्योंकि खड़े हुए भगवान को बैठने का एवं बैठे हुए भगवान को खड़े होने का आदेश नहीं कर सकते, अतः वे जिस मुद्रा में हैं उसी मुद्रा में हृदय में स्थापित हों। तिष्ठ-तिष्ठ,ठः-ठः; ये दोनों पद भगवान के समपाद के प्रतीकरूप में उच्चारित करते हैं ।

जैसे - अपने घर पर आने वाले स्नेहीजन को हम लोग "बैठिए -बैठिए" शब्द उच्चारण कर; उन्हें हर्ष पूर्वक यथायोग्य आसन पर बिठाते हैं। उसी प्रकार हमारे परमार्थ साधक; सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को शुभ परिणामरूप सिंहासन पर स्थापना करने के लिए मुँह से कहते हुए "ॐ ह्रीँ श्री देव-शास्त्र-गुरु समूह अत्र-तिष्ठ-तिष्ठ, ठः-ठः; इति स्थापनं" ठोने में पुष्प क्षेपण करना चाहिए ।

(४) सन्निधिकरण : – भगवान को हृदय मन्दिर में विराजमान करने के बाद, अत्र मम भव-भव वषट् सन्निधिकरणं, मन्त्र पढ़ते हुए भावना करते हैं कि हे भगवन् ! अब आप मेरे भव-भव में सन्निकट रहें अथवा आप यहाँ मेरे अत्यन्त समीप होवें-होवें ।

जैसे - अपने घर पर आने वाले स्नेहीजन को हम लोग आदर पूर्वक यथायोग्य आसन पर बिठाकर ही; उनके पास स्वयं बैठकर

उनके आने की खुशी व्यक्त करते हैं तथा उनके सान्निध्य में अधिक से अधिक समय तक बैठने की; हमारे भावों में आकांक्षा (इच्छा) होती है। ठीक उसी प्रकार से हमारे परमार्थ साधक; सच्चे देव - शास्त्र- गुरु का निवास हमारे विशुद्ध भावों में रहे, इस भावना से सन्निधिकरण के लिए मुँह से कहते हुए "ॐ ह्रीँ श्रीदेव-शास्त्र-गुरु समूह अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्; इति सन्निधिकरणं" ठोने में पुष्प क्षेपण करना चाहिए।

इस प्रकार पूजा के प्रारम्भ में ऐसी भावना करते हुए आह्वानन, स्थापन एवं सन्निधिकरण करना चाहिए।

प्रश्न २० - पूजा में आह्वानन, स्थापन एवं सन्निधिकरण करते समय तीन पुष्प ही क्यों लिये जाते हैं?

उत्तर - वैसे तो भगवान के श्री विहार के समय देवतागण दो-सौ पच्चीस कमलों की रचना करते हैं कारण कि भगवान का विहार किस ओर हो जाए यह बात देवतागण नहीं जान सकते हैं, क्योंकि परमेष्ठियों का विहार पंचों के आग्रह–श्रीफल से नहीं; भव्यों के पुण्यफल से होता है, अतः वहाँ पर देवतागण दो-सौ पच्चीस कमलों की रचना करते हैं, किन्तु यहाँ तो भव्य-भक्त संकल्पित होकर भगवान को अपने हृदय मन्दिर में बुलाना चाहता है, अतः वह तीन पुष्पों की रचना करता है, क्योंकि दो कमल-पुष्प भगवान के दो पैर तले रखे रहेंगे एवं तीसरा पुष्प अगले कदम को रखने के लिए खाली रहेगा। भक्तामर स्तोत्र में कहते हैं कि –

उन्निद्र हेम नव पङ्कज पुञ्ज कान्ति,
पर्युल्लसन नख मयूख शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव एव जिनेन्द्र धत्ता,
पद्मानि तत्र विवुधा परिकल्पयन्ति ॥ ३६ ॥

इसी युक्ति के अनुसार तीन कमल-पुष्प; भगवान की आह्वानन, स्थापन एवं सन्निधिकरण विधि में प्रयोग किए जाते हैं। वे पवित्र पुष्प

इधर-उधर नहीं बिखरें, इसीलिए उन पुष्पों को ठोना में स्थापित करते हैं ।

प्रश्न २१ - इस प्रकार प्रत्येक पूजा में आह्वानन, स्थापन एवं सन्निधिकरण करने के बाद ठोने में रखे उन पुष्पों का क्या करना चाहिए ?

उत्तर - जिस स्थान पर पूज्य पुरुषों का आसन होता है, वह स्थान भी देवों के द्वारा परोक्ष-प्रत्यक्ष के योग्य पूज्यनीय, वन्दनीय विनय के योग्य हो जाता है । गुरु भक्ति में भूधरदास कवि ने कहा भी है –

श्री गुरु चरण जहाँ धरैं, जग में तीरथ होय ।
सो रज मम मस्तक धरैं, भूधर माँगे येह ।।

इस युक्ति के अनुसार पूजा पूर्ण करने के बाद ठोने में रखे उन पवित्र पुष्पों की आसिका (आशीर्वाद) लेना चाहिए अर्थात् उन पुष्पों को बहुमान से उठाकर अपनी आँखों पर, मस्तक पर लगाना चाहिए फिर उन्हें जल से धोकर पूजा की सामग्री में विसर्जित कर देना चाहिए ।

(५) पूजा : – वर्तमान समय में देव-शास्त्र-गुरु की पूजायें; अनेक कवियों ने लिखी हैं । प्राचीन संस्कृत - अपभ्रंश भाषा में भी पूजायें हैं, लेकिन इन सबका उद्देश्य अपने आराध्य की पूजा करना है, अतः किसी विवाद में नहीं पड़कर सुविधानुसार पूजा करनी चाहिए फिर भी यहाँ प्राचीन-प्रचलित हिन्दी के कवि "द्यानतराय" जी द्वारा लिखित पूजन लिखी जा रही है ।

श्री देव-शास्त्र-गुरु की पूजा

प्रथम देव अरहन्त सुश्रुत सिध्दांत जु,
गुरु निरग्रंथ [१]महंत [२]मुकति पुर - पंथ जु ।
तीन रतन जग मांहि सु ये [३]भवि ध्याइये,
तिनकी भक्ति प्रसाद परम पद पाइये ।
"पूजौं [४]पद अरहंत के, पूजौं गुरु पद [५]सार ।
पूजौं देवी सरस्वती, नित प्रति अष्ट - प्रकार ।।"

ॐ ह्रीँ देव-शास्त्र-गुरु समूह ! अत्र अवतर-अवतर संवोषट् इति आह्वाननं ।

ॐ ह्रीँ श्री देव-शास्त्र-गुरु समूह ! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः-ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीँ श्री देव-शास्त्र-गुरु समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणं ।

१. महंत=दिगम्बर साधु; २. मुकतिपुर पन्थ=मोक्षमार्ग; ३. भवि=भव्य; ४. पद=चरण; ५. सार= श्रेष्ठ-पूज्य ।

प्रश्न २२ - जल चढ़ाने का छन्द बताते हुए, जल क्यों चढ़ाया जाता है, कारण बताइये ?

उत्तर -

गीता छन्द

[1]सुरपति [2]उरग [3]नरनाथ तिनकरि, वन्दनीक सुपदप्रभा ।
अतिशोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा ॥
[4]वर नीर - क्षीर समुद्र [5]घट भरि, अग्र तसु बहुविधि नचूँ ।
अरहंत - श्रुत - सिद्धांत - गुरु, निरग्रंथ नित पूजा रचूँ ॥१॥

दोहा - मलिन वस्तु हरलेत सब, जल स्वाभाव मलछीन ।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र - गुरु तीन ॥१॥

ॐ ह्रीँ श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावना १. जन्म-जरा-मृत्यु को नाश करने के लिए जल चढ़ाया जाता है ।

२. जल चढ़ाते समय भक्त विचारता है कि हे प्रभो ! यद्यपि यह जल बाहर में लगी गंदगी को दूर करने वाला है, किन्तु आपका गुणरूपी जल; मेरे राग - द्वेषरूपी मल को दूर करने वाला है । आत्मा में लगे आठ कर्मरूपी मैल को धोने की भावना से जल चढ़ाया जाता है ।

१. सुरपति=सौधर्मेन्द्र; २. उरगनाथ =धरणेन्द्र; ३. नरनाथ =चक्रवर्ती; ४. वर नीर=उत्तम-श्रेष्ठ जल; ५. घट=घड़ा ।

प्रश्न २३ - चन्दन चढ़ाने का छन्द बताते हुए, उसके चढ़ाने का कारण बताइये ?

उत्तर -

गीता छन्द

ते [१]त्रिजग - उदर मझार प्रानी, तपत अति [२]दुद्धर [३]खरे ।
तिन अहित हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥
तसु भ्रमर [४]लोभित घ्राण पावन, सरस चन्दन घसि सचूँ ।
अरहंत - श्रुत - सिद्धांत - गुरु - निरग्रंथ नित पूजा रचूँ ॥

दोहा - चन्दन शीतलता करें , तपत वस्तु परवीन ।
जासों पूजों परम पद, देव-शास्त्र - गुरु तीन ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री देव - शास्त्र - गुरुभ्यो संसार - ताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावना - जिस प्रकार ताप - ज्वर से युक्त व्यक्ति को चन्दन का लेप शांति प्रदान करता है । उसी प्रकार जिनेन्द्रदेव के गुणरूपी शीतल - सुगन्धित चन्दन का लेप संसार के दुःखों से संतप्त जीवों को भवसमुद्र से पार करता है, इसलिये संसार के आतप को दूर करने की भावना से चन्दन चढ़ाया जाता है ।

१. त्रिजग उदर मझार=तीनलोक के पेट के मध्य; २. दुद्धर=कठिन; ३. खरे= सच्चे; ४. लोभित=आकर्षित ।

प्रश्न २३ -अक्षत चढ़ाने का छन्द बताते हुए , चढ़ाने का कारण बताइये ?

उत्तर -

गीता छन्द

यह भव समुद्र [१]अपार [२]तारण, के निमित सुविधि [३]ठई ।
अति दृढ़ परम पावन [४]जथारथ, भक्ति वर नौका सही ॥
उज्ज्वल अखंडित शालि तंदुल , पुञ्ज धरि त्रयगुण [५]जचूँ ।
अरहंत - श्रुत - सिद्धांत - गुरु - निरग्रंथ नित पूजा रचूँ ॥३॥

दोहा - तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन ।
जासों पूजों परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन ।।३।।

ॐ ह्रीँ श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

भावना - १. अक्षय-अविनाशी पद की प्राप्ति के लिए अक्षत चढ़ाया जाता है ।

२. अक्षत; अविनाशी पद नहीं देता है, परन्तु जिनेन्द्रदेव के गुणरूपी अक्षतों की प्राप्ति के लिए, जिन चरणों में अक्षत चढ़ाया जाता है । जितना उत्तम द्रव्य होगा उतना फल भी उत्तम होगा ।

१.अपार=सीमा रहित; २.तारण=पार करने वाली; ३.ठई=रची या स्थापित की; ४.जथारथ=यथार्थ; ५.जचूँ=याचता हूँ ।

प्रश्न २४ - अक्षत में चावल ही क्यों चढ़ाते हैं, अन्य धान्य क्यों नहीं ?

उत्तर - चावल एक अक्षय धान्य है । चावल समस्त विश्व में गरीब से लेकर अमीर से अमीर व्यक्ति भी चावल का प्रयोग करता है । चावल; छिलका रहित होने से पुनः उग नहीं सकता । चावल सफेद होने से शुक्ल लेश्या का प्रतीक है । चावल के अन्दर कोई भी जीव अपना घर नहीं बना सकता है, अतः अक्षत के रूप में चावल ही चढ़ाए जाते हैं ।

जैसे - गेहूँ को चाहने वाला व्यक्ति गेहूँ को बोता है, ज्वार का इच्छुक व्यक्ति चावल को नहीं बोता है, शाली (धान) को बोता है । चावल को अक्षय पद मिल गया है, वह पुनः उगने वाला नहीं है, इसलिए अक्षय पद की प्राप्ति के लिए अक्षय पद प्राप्त अक्षत चढ़ाया जाता है ।

प्रश्न २४ - पुष्प को चढ़ाने का छन्द बताते हुए, पुष्पों के चढ़ाने का कारण बताइये ?

उत्तर -

गीता छन्द

जे विनयवंत सुभव्य [१]उर - [२]अंबुज प्रकाशन [३]भान हैं ।।
जे एक [४]मुख चारित्रभाषत, त्रिजग माँहि प्रधान हैं ।।
लहि कुन्द कमलादिक [५]पहुप, भव - भव [६]कुवेदन सों बचूँ ।
अरहंत - श्रुत - सिद्धांत गुरु - निरग्रंथ नित पूजा रचूँ ।।४।।

दोहा - विविध भांति [७]परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन ।
जासों पूजों परम पद, देव- शास्त्र- गुरु तीन ।।४।।

ॐ ह्रीँ श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावना - जीव की समस्त शक्ति को नाश करने वाला महान् शत्रु ‘‘कामदेव’’ है, जिसे वीतराग प्रभु के अलावा कोई जीत नहीं पाया, ऐसे काम को नाश कर, जिन गुणरूपी पुष्पों की माला की इच्छा करने वाला भक्त; जिनेन्द्रदेव के चरणों में पुष्प चढ़ाता है ।

१.उर=हृदय; २.अंबुज=कमल; ३.भान=सूर्य; ४.मुख=मुख्य; ५.पहुप=पुष्प; ६. कुवेदन=बुरे-दु:ख; ७. परिमल=सुगंधित ।

प्रश्न २५ - नैवेद्य का छन्द बताते हुए, उसके चढ़ाने का कारण बताइये ?

उत्तर -

गीता छन्द

अति सबल मद [१]कंदर्प जाको, क्षुधा - [२]उरग [३]अमान है ।
दुस्सह भयानक तासु नाशन, को [४]सुगरुड़ समान है ।।
उत्तम छहों रसयुक्त नित, नैवेद्य करि घृत में [५]पचूँ ।
अरहंत - श्रुत - सिद्धांत - गुरु - निरग्रंथ नित पूजा रचूँ ।।५।।

दोहा - नाना विधि संयुक्त रस, व्यञ्जन [६]सरस [७]नवीन ।
जासों पूजों परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन ।।५।।

ॐ ह्रीँ श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावना - भव्यात्मा; क्षुधा रोग की शान्ति के लिए नैवेद्य चढ़ाता है, क्योंकि यह नैवेद्य इन्द्रियों को तृप्त नहीं कर सकती है, किन्तु हे प्रभो ! आपके गुणरूपी व्यञ्जनों का मननरूपी अनुभव-आहार मुझे अविनाशी सुख देने वाला है । गुणरूपी सुन्दर-मधुर व्यञ्जनों की प्राप्ति हेतु; ये नैवेद्य चढ़ाता हूँ ।

१.कंदर्प=खोटी शक्ति; २.उरग=सर्प; ३.अमान=प्रमाण रहित; ४.सुगरुड़ = गरुड़ पक्षी; ५.पचूँ=पकाकर; ६, सरस=स्वादिष्ट; ७.नवीन=ताजे बने हुए ।

प्रश्न २६ - दीप का छन्द बताते हुए दीप चढ़ाने का कारण बतलाइये ?

उत्तर -

गीता छन्द

जे त्रिजग [1]उद्यम नाश कीने, मोह तिमिर महाबली ।
तिहि कर्मघाती ज्ञान दीप प्रकाश ज्योति प्रभावली ।।
इह भांति दीप प्रजाल कंचन, के सुभाजन में [2]खचूँ ।
अरहंत - श्रुत - सिद्धान्त - गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूँ ।।६।।

दोहा - स्व - पर प्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकर हीन ।
जासों पूजों परम पद, देव - शास्त्र - गुरु तीन ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावना - भव्यात्मा; अज्ञान-मोहान्धकार को क्षय करने के लिए दीप चढ़ाता हुआ यह सोचता है । हे प्रभो ! यह जड़ दीपक क्षण भंगुर है, संसार के थोड़े से अंधकार को ही नष्ट करने में समर्थ है, परन्तु आपका अखण्ड केवल ज्ञानरूपी दीपक मेरे समस्त अज्ञानांधकार-मोहान्धकार को क्षय करने में समर्थ है, अतः मोहान्धकार का नाश कर केवलज्ञान ज्योति को अन्दर में प्रकट करने के लिए दीप चढ़ाया जाता है ।

१. उद्यम=पुरुषार्थ; २; खचूँ=सजाकर-रचाकर ।

प्रश्न २७ - धूप चढ़ाने का छन्द एवं धूप चढ़ाने का अर्थ बताइए ?

उत्तर -

गीता छन्द

जो कर्म ईंधन दहन अग्नि, समूह सम [1]उद्धत [2]लसैं ।
वर धूप तासु सुगन्धिता करि, सकल परिमलता [3]हंसैं ।
इह भाँति धूप चढ़ाय नित, भव ज्वलन माँहि नहीं पचूँ ।
अरहंत-श्रुत-सिध्दांत-गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूँ ।।७।।

दोहा - अग्नि मांहि परिमल दहन, चन्दनादि गुण लीन ।
जासों पूजों परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन ।।७।।

ॐ ह्रीँ श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावना - अष्टकर्मरूपी शत्रुओं को क्षय करने के लिए अग्नि में धूप चढ़ायी जाती है । भक्त सोचता है; यद्यपि यह धूप मेरे अष्टकर्मों को नाश नहीं कर सकती है, परन्तु आपकी गुणरूपी धूप ही मेरे कर्म ईंधन को जलाने में समर्थ है, इसलिये जिन-गुणरूपी धूप से अष्टकर्मों को जलाने-क्षय करने के लिए धूप चढ़ायी जाती है । जिस धूप की सुगन्धि के सामने संसार की समस्त सुगन्धियाँ लज्जित होती है ।

१. उद्धत=तुरन्त-जल्दी; २. लसैं=शोभित होते; ३. हंसैं=लज्जित होती ।

प्रश्न २८ - फल चढ़ाने का छन्द एवं फल चढ़ाने का अर्थ बताइए ?

उत्तर -

गीता छन्द

[1]लोचन [2]सुरसना घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं ।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं ।।
सो फल चढ़ावत [3]अर्थपूरन, परम अमृत रस [4]सचूँ ।
अरंहत-श्रुत-सिद्धांत - गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूँ ।।८।।

दोहा - जे प्रधान फल फल विषैं, [5]पंचकरण रस लीन ।
जासों पूजों परमपद देव-शास्त्र-गुरु तीन ।। ८ ।।

ॐ ह्रीँ श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावना - संसार के दुखों से भयभीत। मानव; आकुलता रहित सुख को चाहता है, वह सुख मोक्ष में है, इसलिये भक्त; मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए फल चढ़ाता है । भक्त सोचता है; यद्यपि फल तो अभी सड़ जायेंगे मुझे शाश्वत सुख दे नहीं सकते, किन्तु जिनेन्द्रदेव के गुणरूपी फलों की प्राप्ति; मोक्ष की प्रप्ति के लिए भक्त फल चढ़ाता है ।

१.लोचन=नेत्र; २.सुरसना=जिह्वा-जीभ; ३.अर्थपूरण=पुरुषार्थ की पूर्णता; ४.सचूँ=सञ्चित; ५.पंचकरण=पाँचों इन्द्रियाँ ।

प्रश्न २९ - अर्घ का छन्द बताते हुए बताइए कि अर्घ क्यों चढ़ाया जाता है ?

उत्तर -

गीता छन्द

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ ।
वर धूप निरमल फल विविध बहु, जनम के पातक हरूँ ॥
इह भाँति अर्घ चढ़ाय नित [1]भवि, करत शिव [2]पंकति [3]मचूँ ।
अरहंत-श्रुत-सिद्धांत-गुरु, निरग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥९॥

दोहा - [4]वसुविधि अर्घ्य संजोय के, अति [5]उछाह मन कीन ।
जासों पूजों परम-पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन ॥९॥

ॐ ह्रीँ श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

भावना - संसारी जीव; जन्म-जरा-मृत्यु से, संसार के आपत से; नश्वर जीवन से; काम एवं क्षुधा की वेदना से; अज्ञान एवं कर्मों से पीड़ित हुआ; शाश्वत अखण्ड, अमूल्य सुख की प्राप्ति के लिए अर्घ चढ़ाता है ।

१.भवि=भव्य जीव; २.पंकति=नसैनी-सीड़ी, ३.मचूँ=रचूँ, ४.वसुविधि=आठ प्रकार से; ५.उछाह=उत्साह ।

प्रश्न ३० - अर्घ्य एवं अनर्घ्य का क्या अर्थ है ?

उत्तर - अर्घ्य का अर्थ है; मूल्य। संसार के जितने भी पदार्थ हैं, उनका कोई न कोई मूल्य है, जिन्हें खरीदा-बेचा जा सकता है, लेकिन मोक्ष सुख का कोई मूल्य नहीं, जिससे उसे खरीदा या बेचा जा सके अर्थात् अमूल्य है, अतः अनर्घ्य का अर्थ अमूल्य है ।

प्रश्न ३१ - जयमाला किसे कहते है ?

उत्तर - नव देवताओं की अष्टद्रव्य से पूजा के बाद; उनके विशेष भक्ति व श्रद्धायुक्त होकर गुणों का स्मरण करना; गुणानुवाद करना जयमाला है ।

अथवा

पूज्य पुरुषों के गुणों की आरती को जयमाला कहते हैं ।

आ-परि-समन्तात-रति इति आरती अर्थात् पूज्य पुरुषों के समस्त गुणों की रति को आरती कहते हैं ।

प्रश्न ३२ - देव, शास्त्र एवं गुरु का स्वरूप जयमाला के माध्यम से बताइए ?

उत्तर - जयमाला -

"देव-शास्त्र-गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार ।
भिन्न - भिन्न कहूँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार ।।

अरहंत का स्वरूप -

कर्मन की त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोष राशि ।
जे परम सुगुण हैं अनंतधीर, [1]कहवत के छ्यालिस गुण गंभीर ।।
शुभ समवसरण शोभा अपार, [2]शत इन्द्र नमत कर शीश धार ।
देवाधिदेव अरहंत देव, वंदौं मन-वच-तन करि सुसेव ।।१।।

१. कहवत= कहने के; २. शत इन्द्र= सौ इन्द्र ।

जिनवाणी का स्वरूप -

जिनकी [1]धुनि है ओंकार रूप, [2]निर-अक्षरमय महिमा [3]अनूप ।
[4]दश-अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा [5]सात-शतक सुचेत ।।

सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे बारह सुअंग ।
रवि-शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहुप्रीति ल्याय ॥२॥

१. धुनि=ध्वनि; २. निर-अक्षरमय=अक्षर रहित; ३. अनूप= उपमा रहित; ४. दश-अष्ट= अठारह; ५. सात-शतक=सात सौ ।

गुरु का स्वरूप -

गुरु–आचारज उवज्झाय [1]साध, तन नगन रतनत्रय निधि [2]अगाध ।
संसार - देह वैरागधार, [3]निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठ-बीस, भव तारण - तरण जिहाज ईश ।
गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरु नाम जपों मन वचन काय ॥३॥

सोरठा - कोजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरैं ।
"द्यानत" सरधावान, अजर - अमर पद भोगवें ।

१. साध=साधु; २. अगाध=असीमित; ३. निरवांछि=इच्छा रहित ।

ॐ ह्रीँ श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामिति स्वाहा ।

प्रश्न ३३ - जयमाला में किसका वर्णन है ?

उत्तर - जयमाला में अरहंत (देव), जिनवाणी और गुरु के गुणों का वर्णन है ।

प्रश्न ३४ - अरहन्त (देव) कैसे हैं ?

उत्तर - जिन्होंने कर्मों की ६३ प्रकृतियों का नाश कर लिया है, जो १८ दोषों से रहित हैं, जो अनंत चतुष्टय गुणों से युक्त एवं छ्यालीस गुणों से सुशोभित हैं । जिनके समवशरण की शोभा अपूर्व है तथा जो सौ इन्द्रों के द्वारा वंदनीय हैं, वे अरहंत देव हैं, जो कि देवाधिदेव हैं, उनको मन-वचन-काय से नमस्कार है ।

कर्मों की ६३ प्रकृतियाँ निम्न तीन प्रकार से हैं -

पहले प्रकार से चार कर्म की ६३ प्रकृतियाँ -

(१) जीव विपाकी	५६;	(३) क्षेत्र विपाकी	२;
(२) पुद्‌गल विपाकी	२;	(४) भव विपाकी	३

दूसरे प्रकार से चार कर्म की ६३ प्रकृतियाँ -

(१) सर्वघाति २१

(२) देशघाति की २६
(३) अप्रशस्त की १२
(४) प्रशस्त की ४
———
६३

तीसरे प्रकार से कर्मों की ६३ प्रकृतियाँ -
(१) घातिया कर्म की ४७
(२) नाम कर्म की १३ — २ गति;२ गत्यानुपूर्वी; ४ इन्द्रिय; १ स्थावर; १ सूक्ष्म; १ बादर; १ अपर्याप्त; १ आतप = १३
(३) आयुकर्म की ३ - ४७+१३+३ = ६३

प्रश्न ३५ - जिनवाणी का स्वरूप जयमाला से बताइए ?

उत्तर - जिनेन्द्र देव के मुख से खिरी हुई ॐकाररूप वाणी, निरक्षर एवं अनुपम महिमा से युक्त हैं, जो १८ महाभाषाओं एवं ७०० लघुभाषाओं से युक्त है । गणधर के द्वारा गूँथी गई यह जिनवाणी; स्याद्वाद्मयी एवं सप्तभंग से सुशोभित है । सूर्य और चन्द्रमा भी जिस अन्धकार को दूर नहीं कर सकते ऐसे अज्ञानान्धकार को हरण करने वाली माता; जिनवाणी है ।

प्रश्न ३६ - गुरु का स्वरूप जयमाला से बताइए ?

उत्तर - आचार्य, उपाध्याय, साधु; जो बाह्य में नग्न हैं एवं रत्नत्रय-निधि के समुद्र हैं । संसार और शरीर में वैराग्य को धारण करने वाले, वांछा रहित होकर तपों को तपते हुए; मोक्ष की ओर लक्ष्य बनाने वाले गुरु होते हैं । उनमें आचार्य ३६ मूलगुण के धारक एवं उपाध्याय २५ और साधु २८ मूलगुण के धारी होते हैं । ये गुरु; भव समुद्र से तिराने वाले जहाज के समान हैं । ऐसे दिगम्बर - निर्ग्रन्थ गुरुओं की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है । मन, वचन, काय से दिगम्बर गुरुओं को नमस्कार कर उनका ध्यान करना चाहिए ।

प्रश्न ३७ - शान्ति पाठ उच्चारण करते हुए बताइए इसे बोलते समय क्या करना चाहिए ?

उत्तर -

रूप चौपाई (१६ मात्रा)

शान्तिनाथ मुख शशि [१]उनहारी, शील गुण व्रत संयमधारी ।
[२]लखन एक सौ आठ विराजै, निरखत नयन [३]कमलदल लाजै ।।१।।
पंचम चक्रवर्ती पदधारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी ।
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिननायक, नमो शान्तिजिन शान्ति विधायक ।।२।।
[४]दिव्य-विटप [५]पहुपन की वरषा, दुन्दुभि [६]आसन [७]वाणी सरसा ।
छत्र चँवर भामण्डल भारी, ये, [८]तुव प्रातिहार्य मनहारी ।।३।।
शान्ति जिनेश शान्ति सुखदाई, जगत्पूज्य पूजौं शिरनाई ।
परमशांति दीजै हम सबको, पढ़ैं जिन्हें पुनि चार संघ को ।।४।।

१.उनहारी=के समान; २.लखन=लक्षण; ३.कमलदल=कमल की पांखुड़ी; ४. दिव्य-विटप=अशोक वृक्ष; ५. पहुपन=पुष्प; ६. आसन= सिंहासन; ७; वाणी=दिव्यध्वनि; ८. तुव=आपके ।

वसंततिलका -

पूजैं जिन्हें मुकुट-हार किरीट लाके ।
इन्द्रादि देव अरु पूज्य [१]पदाब्ज जाके ।।५।।
सो शान्तिनाथ [२]वरवंश [३]जगत्प्रदीप ।
मेरे लिए करहिं शांति सदा अनूप ।।६।।

१. पदाब्ज=चरण-कमल; २. वरवंश=श्रेष्ठकुल; ३. जगत्प्रदीप=तीन लोक को प्रकाशित करने वाले दीपक ।

इन्द्रवज्रा -

[१]सम्पूजकों को [२]प्रतिपालकों को [३]यतीनकों को [४]यतिनायकों को ।
राजा-प्रजा राष्ट्र-सुदेश को ले, कीजे सुखी, हे जिन ! शान्ति को दे ।।

१. सम्पूजकों=विशेष पूज्यों को; २. प्रतिपालकों=रक्षा करने वाले; ३. यतीनकों=साधु समुदाय को; ४. यतिनायकों=गणधरों को ।

स्रग्धरा छन्द -

होवै सारी प्रजा को सुख, बलयुत हो धर्मधारी नरेशा ।
होवै वर्षा [१]समै-पै तिलभर न रहै व्याधियों का अंदेशा ।।
होवै चोरी न [२]जारी सुसमय वरतै हो न दुष्काल भारी ।
सारे ही देश धारैं जिनवर [३]वृषको जो सदा सौख्यकारी ।।

१. समै-पै = समय पर; २. जारी = व्यभिचार; ३. वृषको = धर्म को ।

दोहा -

घातिकर्म जिन नाशकरि, पायो केवलराज ।
शान्ति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज ।।
(इसके बाद तीन बार जलधारा छोड़नी चाहिए)

दोनों हाथों को जोड़कर प्रार्थना करें -

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगती का ।
[१]सद्वृत्तों का सुजस कहके, दोष ढांकूँ सभी का ।।
बोलूँ प्यारे वचन हित के, आप का रूप ध्याऊँ ।
तौलौं सेऊँ चरण जिन के, मोक्ष जोलौं न पाऊँ ।।

१. सद्वृत्तों = त्यागी वृतियों का ।

आर्या छन्द

[१]तव पद मेरे हिय में, [२]मम हिय तेरे पुनीत चरणों में ।
तबलों लीन रहौं प्रभु, जबलौं पाया न मुक्तिपद मैंने ।।१०।।
अक्षर पद मात्रा से दूषित, जो कछु कहा गया मुझसे ।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणा करि [३]पुनि छुड़ाहुँ भव दुख से ।।११।।
हे जगबन्धु ! जिनेश्वर, पाऊँ तव चरण शरण बलिहारी ।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय हो सुबोध सुखकारी ।।१२।।

१. तव = आपके; २. मम = हमारा; ३. पुनि = फिर ।

प्रश्न ३८ - विसर्जन पाठ बोलिए ?

उत्तर -

दोहा - बिन जाने वा जानके , रही टूट जो कोय ।

तुम प्रसाद तैं परम गुरु, सो सब पूरन होय ।।१।।
पूजन विधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान् ।
और विसर्जन हूँ नहीं, क्षमा करहुँ भगवान ।।२।।
मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव ।
क्षमा करहुँ राखहुँ मुझे, देहु चरण की सेव ।।३।।
आये जो-जो देवगण, पूजे भक्ति प्रमान ।
ते सब जावहुँ कृपाकर, अपने-अपने स्थान ।।४।।

प्रश्न ३९ - पूजा का फल बताइये ?

उत्तर - जिन पूजा से पूजक; स्वयं पूज्य बनता है । जिनेन्द्र भक्त-भव्यात्म पूजा के फल से इन्द्र के ऐश्वर्य को प्राप्त करता है एवं मुकुटबद्ध राजाओं के द्वारा पूज्य; चक्रवर्ती के पद को प्राप्त कर त्रैलोक्य पूज्य –तीर्थङ्कर पद को प्राप्त करता है ।

प्रश्न ४०- गुरूपास्ति का स्वरूप बताओ ?

उत्तर - आरम्भ-परिग्रह रहित, सच्चे दिगम्बर गुरु—आचार्य-उपाध्याय एवं साधुओं की उपासना करना गुरूपास्ति है ।

प्रश्न ४१ - गुरु की उपासना कैसे की जाती है ?

उत्तर - (१) गुरुओं को आगमन कराकर लाना ।
(२) गुरुओं को गमन में पहुँचाना ।
(३) ठहरने पर स्थान आदि की सफाई करना ।
(४) स्वच्छ स्थान पर शौच आदि ले जाना ।
(५) गुरुपूजा - भक्ति - आरती आदि से गुणानुवाद करना ।
(६) वैय्यावृत्ति आदि करना गुरूपास्ति है ।

प्रश्न ४२ - स्वाध्याय का अर्थ क्या है ?

उत्तर - स्व याने अपने; अध्याय याने समीप आना - अपनी आत्मा के समीप आने का नाम स्वाध्याय है । दूसरे अर्थ में जिनेन्द्र देव की वाणी को ध्यान से पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना भी स्वाध्याय है ।

प्रश्न ४३ - स्वाध्याय आवश्यक क्यों ?

उत्तर - स्वाध्याय; प्रत्येक मानव का आवश्यक कर्त्तव्य है, क्योंकि स्वाध्याय से सम्यक्ज्ञान की वृद्धि होती है, जिससे चारित्र – तप की सिद्धि होती है। तप से कर्मों की निर्जरा और कर्म निर्जरा से मोक्ष पद प्राप्त होता है ।

प्रश्न ४४ - स्वाध्याय के कितने भेद हैं ? कौन से ?

उत्तर - स्वाध्याय के पाँच भेद हैं - १. वाचना; २. पृच्छना; ३. अनुप्रेक्षा; ४. आम्नाय; ५. धर्मोपदेश ।

प्रश्न ४५ - वाचना किसे कहते है ?

उत्तर - शास्त्रों को शब्द-अर्थ की शुध्दि से उच्चारण पूर्वक पढ़ना; वाचना स्वाध्याय है ।

प्रश्न ४६ - पृच्छना किसे कहते है ?

उत्तर - तत्त्व में शङ्का उत्पन्न होने पर ज्ञानीजनों से पूछना; यह पृच्छना स्वाध्याय है ।

प्रश्न ४७ - अनुप्रेक्षा स्वाध्याय क्या है ?

उत्तर - पढ़े हुए शास्त्रों के रहस्य का निरंतर चिन्तन, मनन करना; अनुप्रेक्षा स्वाध्याय है ।

प्रश्न ४८ - आम्नाय नाम का स्वाध्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो गद्य-पद्य; जिस छन्दादि में हैं उन्हें, उसी प्रकार से शुद्ध उच्चारण पूर्वक पढ़ना; आम्नाय स्वाध्याय है या पूर्वाचार्यों के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए ग्रंथ का अर्थ करना आम्नाय स्वाध्याय है।

प्रश्न ४९ - धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय किसे कहते है ?

उत्तर - जीवादि सात तत्त्वों का कथन करना धर्मोपदेश नाम का स्वाध्याय है अथवा आक्षेपणी-विक्षेपणी, संवेगनी-निर्वेदनी कथाओं को कहना, धार्मिक नाटक,पूजा-विधान, नृत्य -भक्ति आदि करना धर्मोपदेश स्वाध्याय है ।

प्रश्न ५० - संयम किसे कहते हैं ?

उत्तर - समितिपूर्वक; पाँच इन्द्रियाँ और छठें मन को वश में करना, छहकाय

के जीवों की रक्षा करना; यह संयम है ।

प्रश्न ५१ - संयम के कितने भेद हैं ?

उत्तर - संयम के दो भेद हैं - १.प्राणी संयम; २.इन्द्रिय संयम ।

१. छः काय के जीवों की रक्षा करना प्राणी संयम है ।

२. पाँच इन्द्रिय और छठें मन को वश में करना इन्द्रिय संयम है ।

प्रश्न ५२ - तप किसे कहते है ?

उत्तर - (अ) स्वर्ण के समान जिससे आत्मा को तपाकर खरा बनाया जाता है, उसे तप कहते हैं । (इच्छा निरोधःतप) ।

(ब) कर्मों के क्षय करने के लिए जो क्रिया की जाती है, वह तप कहलाता है ।

प्रश्न ५३ - दान किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर - अपने और पर के उपकार के लिए जो स्वयं का द्रव्य—धन दिया जाता है; वह दान है । दान चार प्रकार का होता है - १. आहार दान; २. औषधि दान; ३. उपकरण दान; ४. वसतिका दान।

प्रश्न ५४ - आहार, औषधि, उपकरण, वसतिका दान का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - **१.** मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका आदि उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्रों में यथाशक्ति नवधा भक्तिपूर्वक, सप्तगुण सहित दान देना आहार दान है ।

२. रोग के दूर करने के लिए शुद्ध निर्दोष औषधि आदि के द्वारा उपचार करना औषधि दान है ।

३. ज्ञान के बढ़ाने वाले साधन पुस्तकादि देना, पुस्तकें छापना, कापियाँ, कलम आदि बाँटना भी उपकरण दान है । शिविरआदि लगाना, अपने पास होने वाले ज्ञान को वितरित करना, उपकरण दान है ।

४.साधु, त्यागी, व्रतियों के ठहरने योग्य हवा, प्रकाश आदि से सहित एवं जीव-जन्तुओं की अधिकता से रहित, साफ-सफाई सहित कोलाहल आदि प्रदूषण से रहित आवास बनवाना-ठहराना वसतिका दान है ।

१. आहार दान में श्रीषेण राजा, श्रेयांस राजा। २.औषधि दान में एक सेठ की पुत्री वृषभसेना, ३.उपकरण – शास्त्रदान में कोण्डेश ४.वसतिका दान में शूकर; विशेष प्रसिद्ध हुए।

प्रश्न ५५ - नवधा भक्ति के नाम बताइये ?

उत्तर - १. पड़गाहन; २. उच्चस्थान; ३. पादप्रक्षालन; ४. पूजा; ५. आनति (नमस्कार); ६. मन शुद्धि; ७.वचन शुद्धि; ८.काय शुद्धि; ९.आहार-जल शुद्धि।

प्रश्न ५६ - पड़गाहन किसे कहते हैं ?

उत्तर - जब पात्र अपने द्वार पर आवे, तब भक्ति पूर्वक प्रार्थना करे कि भो गुरो! मेरे पर प्रसन्न हो जाइए। हे स्वामिन् "नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु" अत्र-अत्र, तिष्ठ-तिष्ठ-आहार-जल शुद्ध है, इस प्रकार से आहार के लिए पात्र का स्वागत करके स्वीकार करना प्रतिग्रह (पड़गाहन) है।

प्रश्न ५७ - उच्चस्थान का स्वरूप बताइए ?

उत्तर - जब पात्र अपने यहाँ भोजन ग्रहण करना स्वीकार कर लें, तब पात्र को अपने रसोई घर के भीतर ले जाकर; निर्दोष-निर्बाध उच्च स्थान (पाटे पर) पर बैठाने का नाम उच्च स्थान है।

प्रश्न ५८ - पादप्रक्षालन का स्वरूप लिखो ?

उत्तर - आये हुए पात्र के भक्ति पूर्वक पैर धोकर गंधोदक लगाने को पादप्रक्षालन कहते हैं।

प्रश्न ५९ - पूजा किसे कहते हैं ?

उत्तर - यथायोग्य जलगंधादि अष्ट-द्रव्य से पात्र की अर्चना करना पूजा है।

प्रश्न ६० - आनति (नमस्कार) का स्वरूप बताइए ?

उत्तर - पञ्चांग; गवासन नमस्कार को आनति कहते हैं।

प्रश्न ६१ - मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि एवं भोजनशुद्धि का स्वरूप बताइए ?

उत्तर - १ - आर्त - रौद्र ध्यान रहित अवस्था को मनशुद्धि कहते हैं।

२ - परुष - कर्कश आदि वचन नहीं बोलने को वचन शुद्धि कहते हैं। ३ - काय शुध्दि तीन प्रकार से है – (१) कुल शुध्दि - विधवा विवाह, विजातीय विवाह आदि से रहित शरीर की शुद्धि को कायशुद्धि कहते हैं। (२) आचारण शुध्दि - व्यसन आदि रहित एवं अष्टमूल गुण आदि सहित आचरण शुध्दि है। (३) शारीरिक शुध्दि - व्याधि रहित, आंगोपांग सहित, स्नानादिक करके शुध्द धुले हुए वस्त्र पहनना शारीरिक शुध्दि है। (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) ४ - प्रयत्नपूर्वक ४६ दोषों से रहित शोधकर भोजन तैयार करना पिण्डशुद्धि एवं पिण्डसम्बन्धी दोषों से रहित निर्दोष आहार को भोजनशुद्धि कहते हैं।

प्रश्न ६२ - दाता के ७ गुण कौन - कौन से हैं?

उत्तर - १. श्रद्धा; २. तुष्टि; ३. भक्ति; ४. विज्ञान; ५. अलुब्धता; ६. क्षमा; ७. सत्त्व; इन सात गुणों से युक्त दाता प्रशंसनीय होता है।

१. श्रद्धा - पात्र को दिये गए दान के फल में प्रतीति रखने को श्रद्धा कहते हैं।

२. तुष्टि - देते समय या दान दिए जाने पर जो हर्ष होता है, उसे तुष्टि कहते हैं।

३. भक्ति - पात्रगत गुण के अनुराग को भक्ति गुण कहते हैं।

४. विज्ञान - देने योग्य द्रव्यादिक की जानकारी विज्ञान गुण है।

५. अलुब्धता - सांसारिक फल की इच्छा न रखना अलौल्य (अलुब्धता) है।

६. क्षमा - दुर्निवार क्रोधादिक के कारण मिलने पर भी क्रोध नहीं करना क्षमा गुण है।

७. सत्त्व - "सत्त्व" मन का वह गुण है कि दाता अल्पधन वाला होकर भी अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर बड़े - बड़े धनाढ्यों को आश्चर्य में डालना है।

प्रश्न ६३ - पाँच सूना किसे कहते हैं?

उत्तर - जिन हिंसात्मक कार्यों से ग्रहस्थ निरन्तर पापों का संचय करता है, उन्हें पाँच सून कहते हैं।

१. पीसना; २. कूटना; ३. चौका-चूला करना; ४. पानी की घिनोची (परण्डा) वगैरह की सफाई करना और ५. घर द्वार को झाड़ना - बुहारना ।

इन पाँच सून क्रियाओं में जो पाप लगता है, वह पाप; पाँच सून रहित उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्रों में दान देने से धुल जाता है । जिस प्रकार जल; खून को धो देता है, उसी प्रकार सत्पात्रों के लिये दिया गया दान भी निश्चय से पाँच सूनों द्वारा लगे पापों को धो देता है । आहार दान की सम्पूर्ण जानकारी के लिये युवा मुनि श्री निर्णय सागर जी की "आहार दान" पुस्तक अवश्य पढ़ें ।

नैष्ठिक श्रावक

प्रश्न १ - नैष्ठिक श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर - देशसंयम का घात करने वाली कषायों के क्षयोपशम की तारतम्यता के वश में दार्शनिक आदि ११; श्रावक सम्बन्धी संयम स्थानों के वशीभूत तथा उत्तम लेश्या वाला नैष्ठिक श्रावक कहलाता है । श्रावक के ११ संयम स्थानों को ११ प्रतिमा भी कहते हैं ।

प्रश्न २ - प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उत्तर - संयम अंश जग्यो जहाँ, भोग अरुचि परिणाम ।
उदय प्रतिज्ञा को भयो, प्रतिमा ताको नाम ।।

भोगों के प्रति जब अरुचि जागृत होती है और तभी प्रतिज्ञा लेने की भावना उत्पन्न होती है और प्रतिज्ञा लेना ही प्रतिमा है ।

प्रश्न ३ -११ प्रतिमाओं के नाम बताइये ?

उत्तर - १. दार्शनिक प्रतिमा; २. व्रतिक प्रतिमा; ३. सामायिक प्रतिमा; ४. प्रोषध प्रतिमा; ५. सचित्त त्याग प्रतिमा; ६. रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा; ७. ब्रह्मचर्य प्रतिमा; ८. आरम्भ त्याग प्रतिमा; ९. परिग्रह त्याग प्रतिमा; १०. अनुमति त्याग प्रतिमा; ११. उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा ।

प्रश्न ४ - दार्शनिक प्रतिमा का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - २५ दोष रहित सम्यग्दर्शन का धारक, संसार-शरीर और भोगों से विरक्त, पञ्चपरमेष्ठी का ध्यान करने वाला और अष्ट मूल - गुणों का धारक श्रावक; दर्शन प्रतिमा का धारी होता है ।

प्रश्न ५ - व्रत-प्रतिमाधारी का स्वरूप लिखिए ?

उत्तर - जो माया, मिथ्या, निदान; इन तीन शल्यों से रहित होता हुआ, अतिचार रहित; ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रतों का पालन करता है, उसको व्रत-प्रतिमाधारी कहते हैं ।

प्रश्न ६ - माया कषाय एवं माया शल्य, मिथ्यात्व एवं मिथ्याशल्य, निदानबन्ध एवं निदानशल्य; इन सबमें अन्तर क्या है ?

उत्तर - माया कषाय औदयिकभाव है तथा नौंवे गुणस्थान तक चलती है, यह कषायरूप होने के कारण उदय भाव को प्राप्त होने से माया कषाय कहलाती है । उसके उदय से जीव उस मायारूप परिणत हो, यह आवश्यक नहीं है अर्थात् माया कषाय के भावों में दूसरों को संकल्पपूर्वक ठगने आदि की योजना नहीं है, लेकिन माया शल्य के भावों में दूसरों को संकल्पपूर्वक ठगने आदि की योजना निरन्तर परिणामों में चलती है, अतः इसे माया शल्य कहते हैं ।

मिथ्या शल्य में मिथ्यादृष्टि लोगों की ख्याति, लाभ, पूजादि देखकर अपने परिणामों में भी उनके जैसी ही ख्याति, पूजा, लाभ, चमत्कार की भावना रखना मिथ्या शल्य है । यह शल्य भी चौथे गुणस्थान तक चलती है, लेकिन मिथ्यात्व भाव तो प्रथम गुणस्थान में ही चलता है ।

निदान शल्य का स्वामी चौथे गुणस्थान तक एवं निदान बन्ध का स्वामी पाँचवें गुणस्थान तक होता है, क्योंकि निदान शल्य भावों में होती है । अभाव से सद्भाव प्राप्त करने के संकल्प को निदान शल्य कहते हैं । निदान बन्ध भव का होता है, इसमें अगले भव में यही मुझे मिले ऐसा प्राप्त करने का संकल्प होता है ।

निदान शल्य में ऐसा भाव होता है कि मैं भी दूसरों जैसा त्याग, तपस्या करूँ तो ऐसे सुख भोगूँ। निदान बन्ध में अपने व्रत, पुण्य, तपस्या के फल की तुच्छ चाहना करना निदान बन्ध है, जो अगले भव के लिए किया जाता है।

ये तीनों ही शल्य चौथे गुणस्थान तक ही चल सकती हैं। तीनों शल्य एक साथ हों यह नियम नहीं है, अतः व्रती निःशल्य होता है।

प्रश्न ७ - माया, मिथ्या, निदान; इन तीन शल्यों का स्वरूप लिखिए तथा इन्हें शल्य क्यों कहते हैं, बताइये ?

उत्तर - माया शल्य - दूसरों को संकल्पपूर्वक ठगना।

मिथ्यात्व शल्य - अतत्त्व श्रद्धान अर्थात् विपरीताभिनिवेश से प्रभावित होना।

निदान शल्य - संसार के भावी भोगों की इच्छा।

जो शरीर में प्रवेश किए हुए काँटे आदि शल्य के समान निरंतर शरीर व मन के संताप में कारण हो, उसको शल्य कहते हैं। माया, मिथ्या, निदान; जिस आत्मा में प्रवेश कर जाते हैं, उसके अन्दर काँटे की तरह संताप उत्पन्न करते हैं, इसीलिये इन्हें शल्य कहा है।

प्रश्न ८ - अणुव्रत का स्वरूप एवं भेद बताइये ?

उत्तर - स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील एवं परिग्रह; इन पाँच पाप का एक देश त्याग अणुव्रत कहलाता है। इन पाँचों के त्याग से ही अणुव्रत होते हैं। वे इस प्रकार हैं -

१. अहिंसाणुव्रत; २. सत्याणुव्रत; ३. अचौर्याणुव्रत; ४. ब्रह्मचर्याणुव्रत; ५. परिग्रह प्रमाणाणुव्रत।

प्रश्न ९ - अहिंसाणुव्रत का स्वरूप बताइये ?

उत्तर- मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से संकल्पपूर्वक त्रस जीवों का घात नहीं करना अहिंसाणुव्रत है। जैसे -

(१) "हिंसा करूँ" ऐसा विचार मन में स्वयं नहीं करना।

(२) "मारो-मारो" इस प्रकार मन से प्रेरणा भी नहीं करना ।

(३) "इसने हिंसा की" यह अच्छा किया; ऐसा मन में विचार नहीं करना ।

(४) "मारता हूँ" ऐसा वचन स्वयं नहीं कहना ।

(५) "मारो-मारो" ऐसा वचन मुख से नहीं कहना ।

(६) "इसने हिंसा की" यह अच्छा किया; ऐसा वचन मुख से नहीं कहना ।

(७) अपने शरीर से स्वयं हिंसा नहीं करना ।

(८) मुक्का आदि से शरीर के द्वारा हिंसा नहीं कराना ।

(९) हिंसा करते हुए को; नेत्र आदि के इशारे से, चुटकी ताली आदि से प्रेरणा नहीं करना ।

प्रश्न १० - सत्याणुव्रत का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - जिसमें स्थूल झूठ को न तो आप बोलते हैं, न दूसरों से बुलवाते हैं और न ही दूसरों की आपत्ति के लिए सच भी स्वयं बोलते हैं, न दूसरों से बुलवाते हैं, उसे सत्याणुव्रत कहते हैं अर्थात् जिस वचन के बोलने पर राजा आदि से दण्ड मिलता है, ऐसा स्थूल झूठ-सत्य स्वयं न बोलना, न दूसरों से बुलवाना सत्याणुव्रत है ।

प्रश्न ११ - अचौर्याणुव्रत का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - जो व्रती-श्रावक किसी की रखी हुई, गिरी हुई वस्तु को बिना दी हुई न लेता है और नहीं देता है, उसकी वह क्रिया अचौर्याणुव्रत है ।

प्रश्न १२ - ब्रह्मचर्याणुव्रत का स्वरूप बताइये ?

उत्तर- जो पाप के डर से परस्त्री को; न तो स्वयं भोगता है और न दूसरों को भोगने की प्रेरणा देता है, उसकी यह क्रिया परस्त्रीत्याग अथवा स्वदारसंतोष नामक अणुव्रत है ।

प्रश्न १३ - परिग्रहपरिमाणाणुव्रत का लक्षण बताइये ?

उत्तर - क्षेत्र-वास्तु, हिरण्य-सुवर्ण, धन-धान्य, दासी-दास, कुप्य-भाण्ड;

इन दशों परिग्रहों को परिमित रखकर, उससे अधिक में इच्छा नहीं रखना, इच्छापरिमित नामक परिग्रहपरिमाणाणुव्रत है ।

प्रश्न १४ -पाँच अणुव्रतों में प्रसिद्ध मनुष्यों के नाम बताइये ?

उत्तर- १. अहिंसाणुव्रत में - यमपाल चाण्डाल; २. सत्याणुव्रत में - धनदेव सेठ; ३. अचौर्याणुव्रत में - श्रेणिक पुत्र वारिषेण; ४. ब्रह्मचर्याणुव्रत में - एक वैश्य की पुत्री नीली; ५.परिग्रहपरिमाणाणुव्रत में - राजपुत्र जयकुमार विशेष प्रसिद्ध हुए ।

प्रश्न १५ - गुणव्रत का स्वरूप एवं भेद बताइये ?

उत्तर- जो अष्टमूलगुणों में गुणवृद्धि या दृढ़ता करते हैं, उनको गुणव्रत कहते हैं । ये गुणव्रत तीन हैं - १. दिग्व्रत; २. अनर्थ दण्डव्रत; ३. भोगोपभोग परिणाम व्रत ।

प्रश्न १६ - दिग्व्रत का लक्षण बताइये ?

उत्तर- सूक्ष्म पापों से भी मुक्त होने के लिए दसों दिशाओं को सीमित करके इससे बाहर जीवन पर्यन्त नहीं जाऊँगा, इस प्रकार संकल्प या प्रतिज्ञा करना दिग्व्रत है ।

प्रश्न १७ - अनर्थदण्ड व्रत का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - दसों दिशाओं की मर्यादा के भीतर प्रयोजन रहित पापबंध के कारणभूत, मन-वचन-काय की प्रवृत्तियों से विरक्त होने को अनर्थदण्डव्रत कहते हैं ।

प्रश्न १८ - अनर्थदण्ड के भेद बताइये ?

उत्तर - अनर्थदण्ड के ५ भेद हैं - १. पापोपदेश; २. हिंसादान; ३. अपध्यान; ४. दुःश्रुति; ५. प्रमादचर्या ।

१. पापोपदेश - तिर्यञ्चों का व्यापार, हिंसा, आरम्भ, छल आदि की कथाओं पर बार-बार उपदेश देना ।

२. हिंसादान - हिंसा के कारणभूत तलवार, फरसा, कुदारी, फावड़ा, छुरी, कटार आदि वस्तुओं का दान देना ।

३. अपध्याय - द्वेष और राग से अन्य की स्त्री, धन आदि के नाश होने,

बंध जाने, कट जाने आदि के चिन्तवन को अपध्यान कहते हैं ।

४. **दुःश्रुति** - आरंभ, परिग्रह, साहस, मिथ्यात्व, द्वेषादि बढ़ाने वाले शास्त्रों का सुनना ।

५. **प्रमादचर्या** - बिना प्रयोजन जमीन खोदना, जल गिराना, अग्नि जलाना, वनस्पति तोड़ना, घूमना - फिरना आदि सब प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड है ।

प्रश्न १९ - भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत का स्वरूप बताइये ।

उत्तर - राग से होने वाली आसक्ति को घटाने के लिए, परिग्रह परिमाण के भीतर नित्य काम में आने वाले इन्द्रिय विषयों का नियत समय या जीवन पर्यन्त के लिए परिमाण करना भोगोपभोग परिमाण व्रत है ।

प्रश्न २० - भोग और उपभोग का लक्षण बताइये ?

उत्तर - जो पदार्थ एक बार भोगने के बाद; भोगने योग्य नहीं रहता है, वह भोग है । जैसे - भोजन, गंध, माला आदि । जो पदार्थ बार - बार भोगने में आता है, उसे उपभोग कहते हैं । जैसे-वस्त्र, आभूषण आदि ।

प्रश्न २१ - शिक्षाव्रत का लक्षण एवं भेद बताइये ?

उत्तर - जिन व्रतों से मुनि बनने की अर्थात् महाव्रत पालने की शिक्षा मिले, उसे शिक्षाव्रत कहते हें । शिक्षाव्रत के चार भेद हैं -

१. देशावकाशिक; २. सामायिक; ३. प्रोषधोपवास; ४. वैय्यावृत्य ।

प्रश्न २२ - देशावकाशिक शिक्षाव्रत का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - दिग्व्रत में जो जीवन पर्यन्त के लिए आवागमन के क्षेत्रादि की बड़ी मर्यादा की थी, उसमें भी काल के विभाग से कमी करना देशवकाशिक व्रत है, इसी को देशव्रत भी कहते हैं । जैसे - मैं इतने समय; दिन तक प्रसिद्ध गली, घर, मकान आदि से बाहर नहीं जाऊँगा आदि ।

प्रश्न २३ - सामायिक शिक्षाव्रत का लक्षण बताइये ?

उत्तर - दिग्व्रत तथा देशव्रत की मर्यादा के भीतर और बाहर सब जगह

सामायिक के लिए निश्चित समय में पाँचों पापों का मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करना सामायिक नामक शिक्षाव्रत है ।

प्रश्न २४ - सामायिक के समय क्या विचार करना चाहिए ?

उत्तर - भव्यात्मा; सामायिक में विचार करें कि यह संसार अशरण है, अशुभ है, अनित्य है, दुखदायक और पररूप है । इसका उल्टा अर्थात् मोक्ष शरण है, शुभ है, नित्य है, सुखमय है और आत्मरूप है, इसलिये यह मोक्ष ही उपादेय है । मैं एक हूँ, मेरी आत्मा ही मुझे उपादेय है इत्यादि प्रकार से विचार करना चाहिए ।

प्रश्न २५ - प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत का लक्षण बताइये ?

उत्तर - प्रत्येक माह की पर्व-तिथियों (अष्टमी, चतुर्दशी) को व्रत धारण की इच्छा से खाद्य (रोटी, दाल, भात आदि) स्वाद्य (लाडू, पेड़ा, बरफी आदि) लेह्य (रबड़ी, चटनी, आम रस आदि) पेय (दूध, पानी छाछ आदि) चार प्रकार के आहार का त्याग करना प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत है ।

प्रश्न २६ - उपवास का अर्थ क्या है ? उपवास के दिन क्या-क्या कार्य नहीं करना चाहिए ?

उत्तर - उप याने समीप, वास याने रहना - आत्मा के समीप रहना उपवास है । उपवास के दिन अशुभ कार्य नहीं करना चाहिए । उपवास के दिन हिंसादि पाँच पापों का त्याग, आरंभ त्याग, शृंगारादि तेल, इत्र, माला, स्नान, अंजन लगाने का त्याग करना चाहिए । सिनेमा टी.वी. देखना, शतरंज, ताश, केरम आदि खेलने का त्याग करना चाहिए ।

(जिनेन्द्र देव की पूजा, आहार दान के लिये स्नान करना निषेध नहीं है) ।

प्रश्न २७ - उपवास के दिन क्या करना चाहिए ?

उत्तर - उपवास के दिन जिनाभिषेक, पूजा, पाठ आदि करते हुए; आलस्य

रहित होकर जिनवाणी का अमृत-पान स्वयं भी करना; दूसरों को भी कराना चाहिए तथा भक्ति, पठन, पाठन, ध्यानादि शुभ कार्यों में समय बिताना चाहिए।

प्रश्न २८ - वैय्यावृत्य का लक्षण बताइये ?

उत्तर - (१) गुणों के निधान गृहत्यागी—मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका के लिए बिना किसी फल की इच्छा से यथाशक्ति दान देना; वैय्यावृत्य नामक शिक्षाव्रत है।

(२) गुणानुरागी-भव्यात्मा के द्वारा; व्रतीजनों के उपसर्गादि दूर करना, औषधादि देना, मार्गजन्य थकावट को दूर करना, पैर आदि दबाना, चार प्रकार के (आहार, औषध, शास्त्र, उपकरण आवास) दान देना; उनका उपचार करना, ये सब वैय्यावृत्य शिक्षाव्रत कहलाता है।

प्रश्न २९ - सामायिक प्रतिमाधारी का लक्षण बताइये ?

उत्तर - चारों दिशाओं में तीन - तीन; कुल १२ आवर्त और १ - १; कुल ४ प्रणाम करके, बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह रहित मुनि के समान खड्गासन या पद्मासन से मन, वचन, काय को शुद्ध रखकर सुबह, दोपहर और शाम के समय सामायिक करने वाला व्यक्ति सामायिक प्रतिमाधारी कहलाता है।

प्रश्न ३० - प्रोषध प्रतिमाधारी का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - प्रत्येक माह की दोनों अष्टमी और चतुर्दशी के दिनों में अपनी शक्ति के अनुसार उत्तम, मध्यम, जघन्य रीति से; विधिपूर्वक प्रोषधोपवास करने वाला प्रोषध प्रतिमाधारी कहलाता है।

प्रश्न ३१ - सचित्त त्याग प्रतिमाधारी का लक्षण बताइये ?

उत्तर - जो दयालु-भव्यात्मा; अपक्व, क्गो, मूल, अशुष्क, सचित्त, जड़, फल, शाक, डाली, कोंपल, जमीकंद, मूल और बीज नहीं खाता है, वह पानी भी गरम करके ही पीता है, वह सचित्त त्याग प्रतिमाधारी कहलाता है।

प्रश्न ३२ - रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमाधारी का लक्षण बताइये ?

उत्तर - जो दयालु व्रती-श्रावक; रात्रि में दाल - भात, रबड़ी, दूध, पेड़ा, पानी आदि चार प्रकार का आहार स्वयं भी नहीं करता है और दूसरों को भी नहीं कराता है, उसे रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमाधारी कहते हैं। इसे दिवामैथुन त्यागी भी कहते हैं।

प्रश्न ३३ - ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी का लक्षण बताइये ?

उत्तर - जो व्रती-श्रावक; शरीर को रजोवीर्य से उत्पन्न; अपवित्रता का कारण, मल-मूत्र से दुर्गन्धित, ग्लानि युक्त, हाड़-मांस का पिंजरा जानकर; कामसेवन का हमेशा त्यागकर शरीर से ममत्व छोड़ कर आत्मस्वभाव में लीन होता है, वह ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी कहलाता है।

प्रश्न ३४ - आरम्भ त्याग प्रतिमा का स्वरूप बताइये।

उत्तर - जो व्यक्ति; जीव हिंसा के कारणभूत नौकरी, खेती, व्यापार आदि आरम्भ के कार्यों से विरक्त होता है, वह आरम्भ त्याग प्रतिमाधारी कहलाता है। (इस प्रतिमा में जिनपूजा और आहार दानादि शुभ कार्य करने का निषेध नहीं है)।

प्रश्न ३५ - परिग्रह त्याग प्रतिमाधारी का लक्षण बताइये ?

उत्तर - जो मनुष्य; बाह्य में दस प्रकार के परिग्रहों से तथा अन्तरङ्ग में चौदह प्रकार के परिग्रहों से सर्वथा ममता को छोड़कर, निर्मोही होकर उनका त्याग करता है, वह परिग्रहत्याग प्रतिमाधारी कहलाता है।

प्रश्न ३६ -बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहों के भेद बताइये ?

उत्तर - बाह्य परिग्रह १० प्रकार के होते है - १. क्षेत्र; २. वास्तु; ३. हिरण्य; ४. सुवर्ण; ५. धन; ६. धान्य; ७. दासी; ८. दास; ९. कुप्प; १०. भाण्ड।

अभ्यन्तर परिग्रह १४ प्रकार का है - १. मिथ्यात्व; २. क्रोध; ३. मान; ४. माया; ५. लोभ; ६. हास्य; ७. रति; ८. अरति; ९. शोक; १०. भय; ११. जुगुप्सा; १२. स्त्रीवेद; १३. पुरुषवेद; १४. नपुंसकवेद।

प्रश्न ३७ - अनुमति त्याग प्रतिमाधारी का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - जो चारों प्रकार की हिंसा के कारण भूत किसी भी पाप कार्य, खेती आदि आरम्भ कार्य, धनादि परिग्रह एवं विवाह आदिक इस लोक सम्बन्धी कार्य में अनुमति नहीं देता है, वह अनुमति त्याग प्रतिमाधारी कहलाता है ।

प्रश्न ३८ - उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाधारी का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - जो व्यक्ति–भव्यात्मा; घर छोड़कर मुनियों के पास जाकर, व्रतों को धारण करता है, तपों को तपता है, भिक्षा से भोजन करता है एवं एक लंगोटी अथवा एक लंगोटी और एक खण्डवस्त्र (चादर) धारण करता है, वह उद्दिष्टत्याग प्रतिमाधारी कहलाता है ।

ऐलक – सिर्फ लंगोट रखते हैं, साथ में पीछी-कमण्डल ।

क्षुल्लक – लंगोट और एक चादर (खण्डवस्त्र) रखते हैं, पीछी - कमण्डल भी रखते हैं ।

क्षुल्लिका – क्षुल्लिका के पास एक सोलह हाथ की साड़ी और ऊपरी से एक चादर रहती हैं । ये पात्र में भोजन करती हैं तथा पिच्छी और धातु का कमंडलु इनके हाथ में रहता है ।

प्रश्न ३९ - श्रावक को ११ प्रतिमाओं के पालने का फल क्या है ?

उत्तर - जो श्रावक; ११ प्रतिमाओं के व्रतों का निरतिचार पालन करता है, वह १६वें स्वर्ग में जाकर देव पद पाता है एवं अधिक से अधिक सात-आठ भवों में मुक्ति पद को प्राप्त करता है ।

प्रश्न ४० - ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका को नमस्कार करते समय क्या बोलना चाहिए ? तथा व्रती-श्रावक को क्या बोलना चाहिए ?

उत्तर - ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका को नमस्कार करते समय 'इच्छामि' या "इच्छाकार" कहना चाहिए । प्रतिमाधारी, जघन्य और मध्यम श्रावक को "वन्दना" कहकर हाथ जोड़ना चाहिए ।

साधक - श्रावक

प्रश्न १ - साधक- श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो श्रावक; बारह व्रतों को जीवन भर निरतिचार पालन करके, अन्त समय में सल्लेखना करता है, वह साधक - श्रावक है ।

प्रश्न २ - साधक - श्रावक को किन परिस्थितियों में सल्लेखना धारण करना चाहिए ।

उत्तर - अकस्मात् उपसर्ग आने पर, दुर्भिक्ष होने पर, निष्प्रतिकार वृद्ध - अवस्था एवं रोग आने पर धर्म की रक्षा के लिये इस शरीर को त्यागने की भावना से सल्लेखना धारण करना चाहिए ।

प्रश्न ३ - क्या सल्लेखना आत्मघात नहीं हैं ?

उत्तर - संसार के समस्त प्राणी सुख से जीना चाहते हैं एवं शान्ति से मरण करना चाहते हैं । शान्ति से मरण करने की प्रक्रिया का नाम सल्लेखना है, क्योंकि व्रतसाधक आत्मा संक्लेश रहित होकर प्राणों को त्यागता है, अतः सल्लेखना; आत्मघात नहीं है ।

आत्मघात में व्यक्ति अनेक इच्छाओं की पूर्ति न होने के कारण मरण करता है, लेकिन सल्लेखना में व्यक्ति समस्त इच्छाओं की तृप्ति होने के बाद शरीर त्यागता है, अतः सल्लेखना; आत्मघात नहीं है ।

प्रश्न ४ - क्या अणुव्रतों को पालने वाले तिर्यञ्च जीव भी सल्लेखना धारण कर सकते हैं ।

उत्तर - हाँ; भगवान पार्श्वनाथ के जीव ने हाथी की पर्याय में सल्लेखना धारण की थी एवं भगवान महावीर स्वामी ने सिंह की पर्याय में एक माह की सल्लेखना धारण की थी ।

भक्ष्य - अभक्ष्य विचार

प्रश्न १ - भक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर - हमेशा खाने योग्य; शुद्ध - मर्यादित पदार्थों को भक्ष्य कहते हैं।

प्रश्न २ - अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर - कभी न खाने योग्य; अशुद्ध - अमर्यादित पदार्थों को अभक्ष्य कहते हैं।

प्रश्न ३ - अभक्ष्य के कितने भेद हैं?

उत्तर - अभक्ष्य के पाँच भेद हैं। (१) त्रस हिंसाकारक; (२) बहुस्थावर हिंसाकारक; (३) प्रमादकारक; (४) अनिष्ट; (५) अनुपसेव्य।

प्रश्न ४ - त्रस हिंसाकारक अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर - जिन पदार्थों के खाने से त्रस जीवों का घात होता है, उसे त्रस हिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे - पंचोदम्बर फल, घुना अन्न, अमर्यादित खाद्य पदार्थ - रोटी, दाल - भात, अचार, बड़ी, पापड़, मुरब्बा आदि।

प्रश्न ५ - बहुस्थावर हिंसाकारक, किसे कहते हैं?

उत्तर - जिन पदार्थों के खाने से अनन्त स्थावर जीवों का घात होता है, उन्हें बहुस्थावर हिंसा कारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे - आलू, अरबी, लहसुन - प्याज, गाजर - मूली, शकरकन्दी आदि जमींकन्द।

प्रश्न ६ - प्रमादकारक अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर - जिन पदार्थों के खाने - पीने से; प्रमाद एवं विकार भाव उत्पन्न होते हैं, वे प्रमादकारक अभक्ष्य हैं। जैसे - तम्बाकू, गांजा - भांग, शराब - फ्रुट बियर, अफीम - हिरोइन, स्मेक आदि।

प्रश्न ७ - अनिष्ट अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर - जो पदार्थ भक्ष्य होने पर भी; व्यक्तिगत-स्वयं को हितकर नहीं हो,

वे अनिष्ट हैं। जैसे - बुखार वाले को हलुआ, हार्ट- अटैक वाले को घी, डायबिटीज वाले को मीठे पदार्थ आदि।

प्रश्न ८ - अनुपसेव्य अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उत्तर - जो पदार्थ कभी सेवन करने योग्य नहीं हो; वे अनुपसेव्य अभक्ष्य हैं। जैसे - मुँह की लार, रज-वीर्य, मूत्र आदि।

प्रश्न ९ - क्या अभक्ष्य और भी होते हैं?

उत्तर - हाँ! द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की अपेक्षा; भक्ष्य वस्तुयें भी अभक्ष्य हो जाती हैं।

प्रश्न १० - द्रव्य की अपेक्षा भक्ष्य वस्तु; अभक्ष्य कैसे हैं?

उत्तर - जैसे - शुद्ध पानी, घी - तेल का; चमड़े के पात्र में रखा होने से अभक्ष्य है। शुद्ध दूध - पानी - रोटी - दाल - शाक आदि को मांसाहारी — बिल्ली, कुत्ते, कौवे - चील आदि के द्वारा जूंठा कर देने पर, मांसाहारी मनुष्यों द्वारा स्पर्श करने पर, जीव-जन्तु गिरकर उसी में मर जाने पर भक्ष्य पदार्थ भी अभक्ष्य हो जाते हैं।

प्रश्न ११ - क्षेत्र की अपेक्षा भक्ष्य वस्तु; अभक्ष्य कैसे हैं ?

उत्तर - जैसे-उत्तर भारत में लौंकी (आल) को भक्ष्य मानते हैं और कटहल को अभक्ष्य मानते हैं। इसी प्रकार से दक्षिण भारत में कटहल को भक्ष्य मानते हैं, लेकिन लौंकी (आल) को अभक्ष्य मानते हैं।

प्रश्न १२ - काल की अपेक्षा भक्ष्य वस्तु; अभक्ष्य कैसे हैं?

उत्तर - जैसे - ग्रीष्म ऋतु में बाजरे के आटे की मर्यादा ५ दिन की है, लेकिन बीकानेर - चुरू आदि गर्म देशों में बाजरे को तुरन्त पीसकर खाते हैं, दो - तीन दिनों में वह आटा अभक्ष्य हो जाता है।

प्रश्न १३ - भाव की अपेक्षा भक्ष्य वस्तु; अभक्ष्य कैसे हैं?

उत्तर - जैसे - भक्ष्य लाल टमाटर को देखकर; जिन्हें अभक्ष्य का विकल्प हो, उन्हें वह लाल टमाटर अभक्ष्य है।

प्रश्न १४ - क्या द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा अभक्ष्य पदार्थ भी भक्ष्य हो सकते हैं?

उत्तर - नहीं; अभक्ष्य तो अभक्ष्य ही हैं, जैसे -मरीज को शहद, शराब देना अभक्ष्य है, मांसाहारी देशों में भी मांसभक्षण नहीं करना, क्योंकि मांस सर्वथा अभक्ष्य है ।

भक्ष्य पदार्थों की मर्यादायें

नोट - भक्ष्य पदार्थों की मर्यादायें; हिन्दी माह के हिसाब से चलती हैं, अतः तिथि दर्पण से अंग्रेजी माह की तारीख आदि देख लेनी चाहिए । हिन्दी माह में भी मर्यादा का बदलना अष्टाह्निका से अष्टाह्निका तक ऋतु अनुसार माना है । अगहन से फाल्गुन तक; चैत्र से आषाढ़ तक, श्रावण से कार्तिक तक ।

नं.	भक्ष्य - पदार्थ	शीत - मर्यादा	ग्रीष्म - मर्यादा	वर्षा - मर्यादा
१.	बूरा	१ माह	१५ दिन	७ दिन
२.	घी	अस्वाद - होने तक	अस्वाद - होने तक	अस्वाद - होने तक
३.	तेल	अस्वाद - होने तक	अस्वाद - होने तक	अस्वाद - होने तक
४.	गुड़	अस्वाद - होने तक	अस्वाद - होने तक	अस्वाद - होने तक
५.	आटे सभी	७ दिन तक	५ दिन तक	३ दिन तक
६.	मसाले पिसे हुए	७ दिन	५ दिन	३ दिन
७.	नमक सांभरी - पिसा	२ घड़ी	२ घड़ी	२ घड़ी (४८ मिनट)
८.	नमक सांभरी - मसाला मिला	६ घन्टे	६ घन्टे	६ घन्टे
९.	नमक सेंधा - पिसा	ओषधी की पिष्टीवत	पिष्टीवत	पिष्टीवत

१०.	दूध (दुहने के बाद)	२ घड़ी	२ घड़ी	२ घड़ी (४८ मिनट)
११.	दूध (उबलने के बाद)	८ पहर	८ पहर	८ पहर (२४ घन्टे)
१२.	दही (गर्म दूध का)	८ पहर	८ पहर	८ पहर (२४ घन्टे)
१३.	छाछ (बिलोने में पानी का)	४ पहर	४ पहर	४ पहर
१४.	छाछ (बाद में पानी का)	२ घड़ी	२ घड़ी	२ घड़ी
१५.	खिचड़ी, रायता कढ़ी दाल तरकारी (सब्जी)	२ पहर	२ पहर	२ पहर
१६.	रोटी - पूरी हलवा आदि	४ पहर	४ पहर	४ पहर
१७.	मौंन वाले पदार्थ	८ पहर	८ पहर	८ पहर
१८.	बिना जल वाले	७ दिन	७ दिन	७ दिन
१९.	बूरा मिला दही	२ घड़ी	२ घड़ी	२ घड़ी
२०.	गुड मिला दही	अभक्ष्य	अभक्ष्य	अभक्ष्य

संक्षिप्त मुनिचर्या

प्रश्न १ - मुनि किसे कहते हैं, उनके कौन - कौन से व्रत होते हैं ?

उत्तर - जो मौन रहते हैं (आत्मा में लीन रहते हैं) उन्हें मुनि कहते हैं। मुनियों के ५ महाव्रत; ५ समितियाँ; ५ इन्द्रियों का विजय एवं ६ आवश्यक तथा इनके अलावा ७ गुण और होते है (देखिये भाग २ में)।

प्रश्न २ - महाव्रत किसे कहते हैं ? वे कितने है ?

उत्तर - अहिंसा आदि व्रतों का पूर्णरूप से पालन महाव्रत कहलाता है। ये पाँच हैं - १.अहिंसा महाव्रत २.सत्य महाव्रत; ३.अचौर्य महाव्रत; ४.ब्रह्मचर्य महाव्रत; ५.परिग्रह त्याग महाव्रत।

प्रश्न ३ - अहिंसा महाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर - छहकाय (पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, आयुकाय, वनस्पतिकाय, एवं त्रसकाय) के जीवों की विराधना नहीं करना एवं रागद्वेषादि विकारी भावों को नहीं करना यह अहिंसा महाव्रत है।

प्रश्न ४ - सत्य महाव्रत एवं अचौर्य महाव्रत का स्वरूप बताइये ?

उत्तर- स्थूल एवं सूक्ष्म; दोनों प्रकार के झूठ को बोलने का पूर्णरूप से त्याग को सत्य महाव्रत कहते हैं एवं किसी की कोई भी वस्तु, पानी और मिट्टी भी बिना दिये नहीं लेना, यह अचौर्य महाव्रत है।

प्रश्न ५ - ब्रह्मचर्य एवं परिग्रह त्याग महाव्रत स्वरूप बताइये ?

उत्तर - स्त्री मात्र का नव कोटि से अब्रह्म त्याग कर शील का पालन करते हुये सदा आत्मा का अनुभव करना ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

प्रश्न ६ - समिति किसे कहते हैं ? वे कौन - सी हैं ?

उत्तर - प्राणियों की रक्षा के लिये सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करना समिति हैं। समिति ५ होती हैं - १. ईर्या समिति; २.भाषा समिति; ३.एषणा

समिति; ४. आदान-निक्षेपण समिति; ५. प्रतिष्ठापना समिति।

प्रश्न ७ - पाँचों समितियों का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - (१) ईर्या समिति – प्रमाद छोड़कर; चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना, ईर्या समिति है।

(२) भाषा समिति – सब जीवों के हितकारी, अहित को दूर करने वाले, कानों को सुखकारी, संदेह एवं मिथ्यात्व के नाशक चंद्रमा के अमृत समान वाणी को बोलना, भाषा समिति है।

(३) एषणा समिति – छ्यालीस दोषों को टालकर, कुलीन श्रावक के घर जाकर , तप की वृद्धि के लिए , शरीर की पुष्टि एवं जिह्वा की लोलुपता के बिना; सरस-नीरस आहार लेना, एषणा समिति है।

(४) आदान निक्षेपण समिति – पवित्रता के उपकरण कमण्डलु, ज्ञान के उपकरण शास्त्र एवं संयम के उपकरण पिच्छी को देखकर उठाना और धरना, आदान-निक्षेपण समिति है।

(५) प्रतिष्ठापना समिति – शरीर के मल-मूत्र और खकार आदि को जीव-स्थान देखकर छोड़ना; प्रतिष्ठापना समिति है।

प्रश्न ८ - गुप्ति किसे कहते हैं; वे कितनी और कौन-सी हैं ?

उत्तर - मन, वचन, काय की स्वच्छंद प्रवृत्ति को रोकना गुप्ति है।

गुप्ति ३ होती हैं - १. मन गुप्ति; २. वचन गुप्ति; ३. काय गुप्ति।

प्रश्न ९ - पंचेन्द्रिय-जय किसे कहते हैं ?

उत्तर - पाँचों इन्द्रियों (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण) के शुभ - अशुभ स्पर्श , रस , गंध , वर्ण और शब्द से राग - द्वेष नहीं करना पंचेन्द्रिय जय कहलाता है।

प्रश्न १० - आवश्यक किसे कहते हैं; वे कितने और कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - अवश्य करने योग्य क्रिया को आवश्यक कहते हैं। वे ६ होते हैं - १. समता; २. वन्दना; ३. स्तुति; ४. स्वाध्याय; ५. प्रतिक्रमण; ६. कायोत्सर्ग।

(१) समता – हमेशा राग - द्वेष से रहित होकर, सामायिक में लीन रहना समता भाव है ।

(२) वन्दना – व्यक्तिगत किसी एक तीर्थङ्कर आदि का स्तवन करने को वन्दना कहते हैं ।

(३) स्तुति – सामूहिकरूप से २४ तीर्थङ्कर; पंचपरमेष्ठी का स्तवन करने को स्तुति कहते हैं ।

(४) स्वाध्याय – जिनेन्द्र कथित शास्त्रों का अध्ययन; स्वाध्याय है

(५) प्रतिक्रमण – पूर्व में लगे दोषों का पश्चाताप प्रतिक्रमण कहलाता है ।

(६) ध्यान – राग-द्वेष, मोह छोड़कर अपनी आत्मा के निकट पहुँचना ध्यान है ।

प्रश्न ११ - ७ शेष गुणों का वर्णन कीजिए ?

उत्तर - (१) मुनिराज स्नान नहीं करते हैं ।

(२) दांतोन नहीं करते हैं ।

(३) शरीर पर थोड़ा भी वस्त्र नहीं पहिनते हैं ।

(४) जमीन पर रात्रि के पिछले भाग में एक करवट से थोड़ी नींद लेते हैं ।

(५) दिन में एक बार आहार लेते हैं ।

(६) खड़े - खड़े; करपात्र (हाथों) में अल्प आहार लेते हैं ।

(७) केशलोंच करते हैं (बालों को अपने हाथों से निकालना)

प्रश्न १२ - आर्यिका का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - आर्यिका; श्राविका नहीं हैं, अपितु वह भी उपचार से महाव्रती है। ये सोलह हाथ की साड़ी पहनती हैं । ये बैठकर हाथ में एक समय शुद्ध भोजन करती हैं । केशों का लोंच करती हैं । नग्नत्व त्याग, स्नान त्याग एवं खड़े आहार को छोड़कर, इनकी सारी चर्या मुनियों के समान होती है ।

प्रश्न १३ - मुनिराज व आर्यिकाओं की नमस्कार विधि बताइये ?

उत्तर - श्रावक; मुनिराज की वन्दना पञ्चांग व अष्टांग से करें। श्राविकायें; सदैव गवासन से नमस्कार करें। मुनिराज को नमस्कार करते समय "नमोऽस्तु" और आर्यिकाओं के लिये "वन्दामि" शब्दोच्चारण करें।

प्रश्न १४ -२८ मूलगुणों के धारी, महाव्रती मुनिराजों का चारित्र कौन - सा चारित्र कहलाता हैं ?

उत्तर - निष्परिग्रही, वात्सल्यमूर्ति, स्वपरोपकारी, ज्ञानध्यान तपस्या में निरत दिगम्बर मुनिराजों के (महाव्रत) आचरण को संयमाचरण चारित्र कहते हैं।

प्रश्न १५ - स्वरूपाचरण चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर - (१) जिनके अपने आत्म का ज्ञान, दर्शन, सुख वीर्यादि सम्पति प्रकट हो जाती है और पर वस्तुओं से सब प्रकार की प्रवृत्ति हट जाती है, उसे स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं।

(२) जब मुनि; भेद विज्ञानरूपी तेज़ छैनी से अन्तरङ्ग का परदा भेदकर रागादि भावों से आत्मा को जुदा करके; आत्महित के लिए, आत्मा के द्वारा, अपने को जान लेते हैं। तब गुण - गुणी, ज्ञानी - ज्ञाता, ज्ञान- ज्ञेय के सब विकल्प मिट जाते हैं, उनका वह चारित्र; स्वरूपाचरण चारित्र कहलाता है।

(३) जहाँ आत्मध्यान की अवस्था में ध्यान-ध्याता-ध्येय का भेद नहीं रहता है और जहाँ शुद्धोपयोग की स्थिर अवस्था प्रकट हो जाती है, उसे स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं।

प्रश्न १६ - स्वरूपाचरण चारित्र की महिमा का वर्णन कीजिए ?

उत्तर - जो मुनि; स्वरूपाचरण में स्थिर हो जाते हैं, उन्हें आत्मा; अनंत चतुष्टयरूप दिखलाई देता है, उसमें कोई रागादि भाव दिखाई नहीं देते हैं। ऐसे महामुनि पापों का क्षय करके अरिहंत, सिद्ध अवस्था को प्राप्त करके सदा के लिए मोक्ष में विराजमान होकर, हमेशा के लिये सुखी जो जाते हैं।

आलोचना पाठ

(कवि जौहरिलाल कृत)

दोहा

बंदों पाँचों परम गुरु, चौबीसों जिनराज ।
करुँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज ।।

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी ।
तिनकी अब निर्वृति काज, तुम सरन लही जिनराज ।।

इक - वे - ते - चउ इन्द्री वा, मन रहित - सहित जे जीवा ।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदई ह्वै घात विचारी ।।

समरम्भ समारम्भ आरम्भ, मन - वच - तन कीने प्रारम्भ ।
कृत - कारित - मोदन करिके, क्रोधादि चतुष्टय धरिके ।।

शत - आठ जु इमि भेदनतें, अघ कीने परिछेदनतें ।
तिनकी कहुँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ।।

विपरीत एकान्त विनय के, संशय अज्ञान कुनय के ।
वश होय घोर अघ कीने, बचते नहिं जाय कहीने ।।

कुगुरुन की सेवा कीनी , केवल अदयाकरि भीनी ।
या विधि मिथ्यात्व भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो ।।

हिंसा पुनि झूँठ जु चोरी, पर - वनितासों दृग जोरी ।
आरम्भ परिग्रह भीनों , पन - पाप जु या विधि कीनों ।।

सपरस रसना घ्रानन को, दृग कान विषय सेवन को ।
बहु करम किये मनमानें, कछु न्याय-अन्याय न जानें ॥

फल पञ्च उदंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये ।
नहिं अष्ट-मूलगुणधारी, कुविसन सेये दुःखकारी ॥

दुइ-बीस अभक्ष्य जिन गाये, सो भी निशि-दिन भुञ्जाये ।
कुछ भेदा-भेद न पायो, ज्यों-त्यों करि उदर भरायो ॥

अनंतानु जु-बंधी जानों, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानों ।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये ॥

परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संजोग ।
पन-बीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥

निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई ।
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विष-फल खायो ॥

किये आहार - विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा ।
बिना देखी धरी-उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाई ॥

तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकल्प उपजायो ।
कछु सुधि-बुधि नाहि रही है, मिथ्या-मति छाय गयी है ॥

मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी ।
भिन्न-भिन्न अब कैसे कहिये , तुम ज्ञानविषैं सब पइये ॥

हा ! हा ! मैं दुठ अपराधी, त्रस - जीवन - राशि विराधी ।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुना नहिं लीनी ।।

पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जांगा चिनाई ।
पुनि विन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो ।।

हा ! हा ! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी ।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा ।।

हा ! हा ! परमाद बसाई , बिन देखे अगनि जलाई ।
तामधि जे जीव जु आये, ते हूँ परलोक सिधाये ।।

बींध्यो अन्न राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो ।
झाड़ू ले जांगा बुहारी, चिंटी आदिक जीव बिदारी ।।

जल छानि जिवानी कीनी, सो हि पुनि डारि जू दीनी ।
नहिं जन - थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ।।

जल - मल मोरिन गिरबायो, कृमि - कुल बहु घात करायो ।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ।।

अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई ।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारे धूप डराया ।।

पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरम्भ हिंसा साजै ।
किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी ।।

इत्यादिक पाप अनन्ता, हम कीने श्री भगवन्ता ।
सन्तति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिये न जाई ।।

ताकों जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो ।
फल भुञ्जत जिय दुःख पावैं, बचतें कैसे करि गावें ।।

तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी ।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है ।।

जो गाँव पती इक होवे, सो भी दुखिया दुःख खोवे ।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुःख मेटहुँ अन्तरजामी ।।

द्रौपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो ।
अञ्जन से किये अकामी, दुःख मेट्यो अन्तरजामी ।।

मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो ।
सब दोष रहित करि स्वामी, दुःख मेटहुँ अन्तरजामी ।।

इन्द्रादिक पदवी न चाहूँ, विषयन में नाहिं लुभाऊँ ।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निज - पद दीजे ।।

दोहा

दोष रहित जिनदेव जी, निजपद दीज्यो मोय ।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनन्द मंगल होय ।।
अनुभव माणिक पारखी, **'जौहरि'** आप जिनन्द ।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण - शरण आनन्द ।।